चन्दामामा
अप्रैल १९८५
2
RS

जब दाँतों की सड़न को मेरे बेटे ने पहचाना

फोरहॅन्स फ़्लोराइड

स्वाद वाला, झागवाला टूथपेस्ट

दाँत और मसूड़े दोनों की सुरक्षा करता है.

FOR THE GUMS

forhan's

with active FLUORIDE to check tooth decay

331 F 183 HIN

अब बच्चों के लिए
आ गई महाभारत –
अमर चित्र कथा
की प्रस्तुति.
रोचक • बहुरंगी • प्रामाणिक
महाभारत-१
६० भागों की
चित्रित कथाओं से
अपना संग्रह
तैयार कीजिए.
विक्रेता :
इंडिया बुक हाउस.

Campa
Campa
Campa
कैम्पा के संग संग
लेते मज़ा हम!
कैम्पा ऑरेंज फ्लेवर-
मौजमस्ती का स्वाद!
OBM/5381

चन्दामामा

संस्थापक: 'चक्रपाणि' संचालक: नागिरेड्डी

बुद्धिमान लोगों में एक स्वाभाविक विनम्रता होती है। वे आत्म प्रशंसा के दोष से सामान्यतया बहुत दूर रहते हैं। पर मूर्खों की स्थिति इससे सर्वथा भिन्न है। ऐसे लोग अत्यन्त साधारण मामलों में भी किस तरह धोखे के शिकार हो जाते हैं, इसका प्रमाण हमें 'नाचनेवाली बकरी' कहानी में मिलता है।

कुछ लोग अपने वृद्ध पिता को सुखी बनाने का संकल्प करते हैं, पर उन्हें वैसा अवसर ही नहीं मिलता; कुछ लोग अपने वृद्ध पिता की कमाई पर आँखें लगाये रहते हैं और कुछ वृद्ध पिता ऐसे हैं जो अपने बेटों की कमाई पर निर्भर नहीं रहना चाहते। 'सहानुभूति' कहानी हमें कुछ ऐसे ही सत्यों का बोध कराती है।

अमर वाणी

न कुर्यात् कलहं स्त्रीभिः, बाले सह न चिंतयेत्।
न त्यजेदुत्तमं शीलं, न कुर्यात् स्वामि गर्हणम् ॥

[स्त्रियों के साथ कलह करना, प्रौढ़ विषयों पर अल्पवयस्कों के साथ चिंतन करना, उत्तम आचरण को त्यागना, मालिक की निंदा करना—ये चारों कार्य त्याज्य हैं।]

वर्ष: ३७ अप्रैल १९८५ अंक: ८

एक अंक: २-०० :: वार्षिक चन्दा: २४-००

छात्र और स्वाधीनता आन्दोलन

नई दिल्लीः मुख्य कार्यकारी पार्षद श्री जगप्रवेश चंद्र ने घोषणा की है कि दिल्ली प्रशासन स्वाधीनता आन्दोलन के इतिहास के बारे में पुस्तक लिखने पर 4.50 लाख रुपये के पुरस्कार देगा। इतिहास का काल 1857 से 1947 तक होगा और यह पुस्तक माध्यमिक तथा उच्चतम माध्यमिक विद्यालयों के छात्रों के लिए होगी। पुरस्कारों का विवरण इस प्रकार है:—

प्रथम पुरस्कारः

1.50 लाख रुपये एक अंग्रेज़ी की और एक हिन्दी की पुस्तक के लिए

दूसरा पुरस्कारः

50,000 रुपये। एक अंग्रेज़ी की और एक हिन्दी की पुस्तक के लिए।

तीसरा पुरस्कारः

25,000 रुपये। एक अंग्रेज़ी की और एक हिन्दी की पुस्तक के लिए।

वित्त मंत्रालय द्वारा ये पुरस्कार राज्य पुरस्कार घोषित किये गये हैं। इससे इन पुरस्कारों की प्रतिष्ठा बढ़ी है और पुरस्कार की राशि आयकर से भी मुक्त है।

इस पुस्तक का मूल उद्देश्य स्वाधीनता आन्दोलन के बारे में देश की युवा पीढ़ी को पूरी जानकारी देना है। विभिन्न जन आन्दोलनों में स्वाधीनता सेनानियों द्वारा निभाई गई वीरतापूर्ण भूमिका की जानकारी से युवा नागरिकों के दिलों में देश प्रेम की भावना पैदा होगी। इससे धर्मनिरपेक्षता को बढ़ावा मिलेगा और राष्ट्रीय एकता मज़बूत होगी, जिस पर हमारा राष्ट्रीय अस्तित्व निर्भर है।

पुस्तक की पाण्डुलिपि अंग्रेज़ी या हिन्दी, किसी भाषा में लिखी जा सकती है और इसमें लगभग 40,000 शब्द होने चाहिए। पुस्तक की तीन पाण्डुलिपियां, 31 दिसम्बर, 1985 तक सचिव, मुख्य कार्यकारी पार्षद, दिल्ली प्रशासन, पुराना सचिवालय दिल्ली को भेजी जानी चाहिए। पाण्डुलिपियां डबल स्पेस में टाइप होनी चाहिए और पावती सहित रजिस्ट्री द्वारा भेजी जानी चाहिए।

प्रसिद्ध लेखकों और ख्यातिप्राप्त इतिहासविदों की एक समिति इन पाण्डुलिपियों की समीक्षा करेगी। दिल्ली प्रशासन पहला पुरस्कार प्राप्त करने वाली पाण्डुलिपि के सभी अधिकार अपने पास रखेगा और जो उचित समझेगा, उसमें संशोधन करने के बाद देश की किसी भी भाषा में इसका अनुवाद, मुद्रण, प्रकाशन और विक्रय कर सकेगा। दूसरा और तीसरा पुरस्कार प्राप्त करने वाली पुस्तकें तथा अन्य पुस्तकों के लेखक अपनी पाण्डुलिपियां किसी भी प्रकाशक से छपवा सकते हैं।

अधिक जानकारी के लिए कृपया मुख्य कार्यकारी पार्षद, दिल्ली प्रशासन, पुराना सचिवालय, दिल्ली-110 054 को लिखें।

सहानुभूति

चैतन्य की शिक्षा समाप्त हुई और उसे बिना किसी कष्ट के शहर में नौकरी भी मिल गयी। उसने अपना निवास भी गांव से शहर में कर लिया। हर रोज़ वह किराये की गाड़ी लेता और दफ़्तर चला जाता।

बूढ़ों के लिए चैतन्य के हृदय में गहरी सहानुभूति थी। वह जिस किराये की गाड़ी से दफ़्तर जाता, उसके मालिक मंगलदास को पचास रुपये महीना दिया करता था। गाड़ी में बैठे वह अक्सर मंगलदास से पूछता, "मंगलदास! तुम्हारे दो बेटे थोड़ा-बहुत कमा ही लेते हैं। ऐसी हालत में तुम यह कष्ट क्यों उठाते हो? घर पर बैठकर आराम से क्यों नहीं खाते?"

मंगलदास मुस्कुराकर हमेशा यह जवाब देता, "बाबू जी, मुझे अपने बेटों की कमाई पराई सम्पत्ति जैसी लगती है। जब तक शरीर में दम है, तब तक खुद की मेहनत से गुज़ारा करने में मुझे बड़ा आत्म संतोष मिलता है।"

चैतन्य के पिता ने अनेक तकलीफें झेलकर उसे शहर में पढ़ाया था। वह कभी-कभी इस बारे में पिता से कह कर जब दुखी हो जाता तो उसके पिता यही जवाब देते थे, "बेटा! तुम जिस दिन कमाने लग जाओगे, उस दिन मैं सारे काम छोड़कर आराम से घर पर बैठ जाऊंगा।"

चैतन्य की शिक्षा समाप्त हुई और वह नौकरी पाने के लिए जैसे ही प्रयत्न करने लगा कि उसके पिता को बीमारी ने आ घेरा और चैतन्य को नौकरी मिलने से एक सप्ताह पहले ही स्वर्ग सिधार गया। चैतन्य के मन में यह पीड़ा घर कर गयी कि वह अपने पिता को थोड़े दिन भी सुखी नहीं रख पाया।

चैतन्य जिस रास्ते से दफ़्तर जाता था, उसी रास्ते के चौराहे पर सत्तर साल का एक बूढ़ा

टोकरी में पकौड़े-भजिये लेकर बेचने के लिए बैठा रहता था। शाम को घर लौटते वक्त भी चैतन्य देखता कि वही बूढ़ा बेहाल-सा टोकरी लेकर बैठा हुआ है। सारे दिन की धूप उसके सिर से गुज़रती, इसकी कल्पना मात्र से चैतन्य का दिल कातर हो उठता।

एक बार करीब दस दिन तक वह बूढ़ा चौराहे पर दिखाई नहीं दिया। चैतन्य के मन में शंका हुई कि कहीं बूढ़ा मर तो नहीं गया है। लेकिन अगले दिन जब उसने बूढ़े को उसी पुरानी जगह पर टोकरी के सामने बैठा देखा, तो उसकी खुशी का कोई पारावार न रहा।

चैतन्य ने मंगलदास से गाड़ी रोकने के लिए कहा। उतर कर वह बूढ़े के पास पहुंचा और पूछा, "बाबा! तुम इधर दस दिन से यहां दिखाई नहीं दिये, क्या बात है?"

एक अजनबी के मुंह से ऐसी आत्मीय बात सुनकर बूढ़े को बड़ा संतोष मिला। उसने सिर हिलाकर फीके स्वर में कहा, "तो बाबू जी! आप मुझे रोज़ यहां बैठे हुए देखते हैं? बात यह है कि मैं तेज़ बुखार में पड़ गया था। बस ऐसा समझो कि मौत के मुंह से निकल कर आया हूं।"

बूढ़े की बात सुनकर चैतन्य का दिल और ज़्यादा पसीज उठा। उसने नरम शब्दों में पूछा, "बाबा! अगर ये सारी चीज़ें बिक जायें तो तुम्हें कितने पैसे मिल जायेंगे?"

"चार रुपये! एक रुपये का मुझे मुनाफा होगा।" बूढ़े ने जवाब दिया।

"तब तो ये सारी चीज़ें मुझे दे दो। मैं तुम्हें पांच रुपये दिये देता हूं।" चैतन्य बोला।

बूढ़ा मुंह फाड़े देखता रह गया। उसने सारा सामान लाकर गाड़ी में रख दिया और चैतन्य बूढ़े को पांच रुपये देकर गाड़ी में बैठ गया।

मंगलदास ने चैतन्य से पूछा, "बाबूजी! इतने सारे भजिये-पकौड़ों का तुम क्या करोगे?"

"तुम ले लेना, और अपने अड़ोस-पड़ोस के बच्चों में बांट देना।" चैतन्य ने कहा।

दूसरे दिन भी गाड़ी जब चौराहे पर पहुंची तो चैतन्य ने वही किया। बूढ़े को पांच रुपये दिये

और टोकरी की सारी चीज़ें गाड़ी में रख लीं।

तीसरे दिन भी जब चैतन्य ने मंगलदास से गाड़ी रोकने को कहा, तो मंगलदास ने पूछा, "बाबूजी! आप इस तरह कितने दिन तक रोज़ पांच रुपये खर्च करते रहेंगे?"

"जब तक यह बाबा ज़िन्दा है!" चैतन्य ने जवाब दिया

चैतन्य गाड़ी से उतर कर बूढ़े के पास पहुंचा और उसे पांच रुपये देने लगा। बूढ़े ने हाथ जोड़ लिये और बोला, "बाबूजी! रोज़ मेरा सारा का सारा सौदा ख़रीदकर मुझे मुसीबत में मत डालो। आप मेरी सारी चीज़ें ख़रीद लेते हैं और मैं जल्दी घर पहुंच जाता हूं। वहां मुझे आराम करता देख मेरा बैटा सहन नहीं कर पाता। वह दिन भर मुझे कोई न कोई काम बताता रहता है। कल भरी दोपहरी में मुझे लकड़ी चीरनी पड़ी।"

बूढ़े का जवाब सुनकर चैतन्य को बड़ा अजीब-सा लगा और वह दुख से भर उठा। एक उसका अपना पिता था, जो समय आने पर पुत्र से सुख पाने की इच्छा रखता था, पर ऐसा अवसर आने से पहले ही वह स्वर्ग सिधार गया। इधर यह मंगलदास है जो मिले हुए मौक़े का भी लाभ नहीं उठाना चाहता। और उधर यह बूढ़ा बाबा है। इसका बेटा इसे चैन से बैठने नहीं देना चाहता, इसीलिए इसे चौराहे की कड़ी धूप में बैठकर यह छोटा-सा धंधा करना सुखकर लगता है!"

चैतन्य ने उसी क्षण निश्चय कर लिया कि इस बूढ़े के बेटे को ठीक सबक़ सिखाना

चाहिए। उसने बूढ़े से पूछा, "बाबा! क्या तुम मेरे घर चलोगे? वहां तुम्हें खाने-पीने की कोई तकलीफ़ न होगी?"

बूढ़ा कुछ क्षण मौन रहकर बोला, "बाबूजी! मेरा बेटा न मानेगा। वह कोई न कोई झगड़ा-टंटा शुरू कर देगा।"

"इसकी तुम चिंता मत करो! चलो, गाड़ी में बैठ जाओ।" यह कहकर चैतन्य ने बूढ़े की बांह थाम ली और उसे गाड़ी में बैठाकर अपने घर ले गया।

बूढ़े का बेटा बाप को घर आया न देख परेशान हो उठा। उसने सब तरफ़ पूछताछ की और फिर दूसरे दिन चैतन्य के घर पहुंचा।

चैतन्य ने उसे समझाया कि बूढ़ा भरी दोपहरी में कैसा कष्ट उठाता है। फिर उसने पूछा, "इस बुढ़ापे में अपने बाप को सुख तो क्या दो और उलटे उसके हाथों की कमाई की इच्छा रखते हो?"

बूढ़े का बेटा सकुचाकर बोला, "भाई-साहब! मैं इतना स्वार्थी नहीं हूं। मेरे पिता जो भी कमाते हैं, मैं उनके खाने-कपड़े पर ही खर्च करता हूं।"

"अगर यह बात है तो तुम्हारे पिता को मैं अपने घर में रख लेता हूं। उनके खाने-कपड़े का खर्च मैं उठाऊंगा। तुम्हें इसमें कोई एतराज़ तो नहीं है?" चैतन्य ने पूछा।

बूढ़े का बेटा अपने बाप का चेहरा देख लज्जित हो गया। उसने अपना सिर झुका लिया। उसे शर्मिन्दा देख चैतन्य बोला, "मैं जानता हूं कि इस बुढ़ापे में तुम्हारे पिता का तुम्हारे ही घर रहना न्याय-संगत है। पर तुम्हें उनके साथ नौकर जैसा व्यवहार नहीं करना चाहिए, पिता की तरह उन्हें रखना चाहिए।"

बूढ़े के लड़के की आंखों में आंसू आगये। वह अपनी करनी पर पश्चाताप करता रहा। उसने हाथ जोड़कर कृतज्ञ भाव से चैतन्य को नमस्कार किया और अपने बाप से बोला, "बाबूजी! चलो हम अपने घर चलते हैं। अब मेरी आंखें खुल गयी हैं।" उसने बाप का हाथ थामा और अपने घर ले गया।

५

[चंद्रवर्मा ने अपने सेनापति धीरमल्ल के साथ नगर में घुस आये अनेक शत्रुओं का संहार किया। लेकिन इस बीच सर्पकेतु नई सेना लेकर आ पहुंचा। चंद्रवर्मा, सुबाहु और धीरमल्ल सैनिकों के साथ महल के दुर्ग की रक्षा के लिए चले। उन्होंने देखा कि शत्रु-सैनिक क़िले को घेरकर उसके दरवाज़े तोड़ने की जी-तोड़ कोशिश कर रहे हैं। चंद्रवर्मा ने उन पर हठात् हमला बोल दिया ... अब आगे पढ़िए...]

चंद्रवर्मा और सर्पकेतु के सैनिकों के बीच दुर्ग के प्रवेश-द्वार पर संग्राम छिड़ गया। सर्पकेतु के सैनिक संख्या की दृष्टि से चंद्रवर्मा के सैनिकों की तुलना में चार-पांच गुना अधिक थे, फिर भी वे चंद्रवर्मा के सैनिकों के सामने टिक नहीं पा रहे थे। पर जब उन्हें मालूम हुआ कि चंद्रवर्मा के सैनिक बहुत कम हैं, तब वे हिम्मत बटोर कर लड़ने लगे।

दोनों दलों के बीच काफ़ी देर तक भयानक युद्ध हुआ। चंद्रवर्मा बहुत प्रयत्न करने पर भी दुर्ग के द्वार तक पहुंच नहीं पा रहा था। वह सोचने लगा कि अब क्या करना ठीक होगा कि तभी दूर पर एक और अश्वदल के आने का भारी शोर सुनाई दिया। दूसरे ही क्षण सुबाहु ने अपने घोड़े को चंद्रवर्मा की तरफ़ बढ़ाया और धीरे से कहा, "युवराज। हम एक और बड़ी आफ़त में फंसनेवाले हैं। सर्पकेतु हम पर पीछे से आक्रमण करने के लिए नयी अश्वसेना को

ला रहा है। अगर हम हठ पूर्वक अपना यह युद्ध जारी रखेंगे तो इस तरह पिस जायेंगे जैसे चक्की के दो पाटों के बीच अनाज पिस जाता है! इसलिए हमें विवेकपूर्वक सोच-समझ कर सावधानी से आगे की योजना करनी होगी। पर हमारे पास ज्यादा देर तक सोच-समझने का समय भी नहीं रहा। अतः तत्काल हमें शीघ्र निर्णय लेना होगा।"

चंद्रवर्मा समझ गया कि ऐसी हालत में दुर्ग के भीतर घुसना असम्भव है। अब वह अपने साथियों के साथ दो दलों के बीच फंस गया था, वहां से हट जाने के सिवा अब और कोई उपाय नहीं था। सेनापति धीरमल्ल ने भी इस विषम स्थिति को भांप लिया। सैनिकों के कोलाहल के बीच युवराज तक अपनी आवाज़ पहुंचाते हुए वह ज़ोर से बोला, "युवराज! आप यहां से तुरन्त निकल भागिये, मैं अपने वीरों की मदद से आपके बचकर निकलने का मार्ग बनाता हूं। कृपया आप एक पल भी विलम्ब न करें।"

चंद्रवर्मा के पास सोचने का समय नहीं था। शत्रुओं का अश्वदल पीछे से पास आता जा रहा था। चंद्रवर्मा ने अपना घोड़ा दुर्गद्वार से पीछे की तरफ़ मोड़ लिया और ज़ोर से पुकारा, "सुबाहु!" सुबाहु ने अपना घोड़ा राज कुमार की बगल में कर लिया और वे अपनी तलवारों से शत्रु सैनिकों के सिर काटते हुए अपने लिए रास्ता बनाने लगे। वे अब पीछे हट रहे थे।

शत्रु-सैनिकों को चंद्रवर्मा की योजना का बिलकुल पता न था। बस, वे यही सोच रहे थे कि उनके आगे व पीछे के दो दलों के बीच बुरी तरह से फंस गये हैं। इसलिए उन पर विजय पाना बायें हाथ का खेल है। यही समझ कर वे उत्साह के साथ कोलाहल करते हुए आगे बढ़ रहे थे। लेकिन अचानक चंद्रवर्मा और सुबाहु शत्रु-सैनिकों के बीच से निकलकर भागने लगे।

शत्रु सैनिकों को जब चंद्रवर्मा की योजना का पता लगा तब उन सब ने उनका पीछा करने का यत्न किया, पर सेनापति धीरमल्ल ने उनके रास्ते को रोक लिया। मौक़ा पाकर चंद्रवर्मा और सुबाहु युद्ध क्षेत्र से निकल कर भागने लगे।

कुछ दूर राजपथ पर आगे बढ़ने के बाद उन्होंने अपने घोड़ों को नगर के दक्षिणी द्वार की तरफ़ मोड़ दिया। चंद्रवर्मा ने समझ लिया था कि अगर उन्हें नगर से बाहर निकलना है तो उनके लिए दक्षिण द्वार ही एकमात्र शरणस्थान है। वह जानता था कि बाकी सभी द्वार शत्रु के कब्जे में आ चुके थे।

चंद्रवर्मा और सुबाहु ने अपने घोड़े दक्षिण द्वार के पास रोके और टोह लेने लगे कि कहीं द्वार के आस पास शत्रु के सैनिक छिपे हुए तो नहीं हैं। पर वहां शत्रुसेना का कोई निशान नज़र नहीं आया। कुछ लोग उस द्वार से होकर बाहर जा रहे थे और करीब पांच-छह शत्रु सैनिक द्वार के एक तरफ़ खड़े बातचीत में मशगूल थे। उनके घोड़े थोड़ी दूर पर खूंटों से बंधे हुए थे। ऐसा प्रतीत हो रहा था कि वे एक दम असावधान हैं। उन्होंने कल्पना तक नहीं की कि चंद्रवर्मा पीछे लौट कर उस दुर्ग द्वार से होकर भाग जाने का प्रयत्न करेगा।

सुबाहु न केवल एक कुशल योद्धा था, बल्कि वह मुसीबत के समय तत्काल उचित निर्णय लेने की अद्भुत क्षमता भी रखता था। इस कारण से उसका दिमाग बड़ी तेजी के साथ काम करने लगा कि फिलहाल इस संकट से कैसे पार पाया जाय। उधर युवराज चंद्रवर्मा को भी सुबाहु की सामर्थ्य पर अविचल विश्वास था। आखिर चंद्रवर्मा भी उस का विचार जानने के ख्याल से उसकी तरफ़ दृष्टि दौड़ा कर ताकने

लगा। "युवराज! हमारे सेनापति धीरमल्ल दुश्मन की फौज को हमारा पीछा न करने के लिए रोक रहे हैं। पर उनके पास सिर्फ़ मुट्ठी भर सैनिक हैं, उनकी मदद बहुत देर काम न आयेगी और दुश्मन के सैनिक यह बांध तोड़ शीघ्र ही हमारा पीछा करने लगेंगे। हम जितनी जल्दी हो सके, नगर के बाहर निकल चलें। आप घोड़े को छलांग लगा द्वार पार कीजिए!" सुबाहु ने कहा।

चंद्रवर्मा ने हामी भरी और घोड़े को जोर से ललकार कर हांक दी। उसी समय गप्प मार रहे उन सैनिकों ने राजकुमार और सुबाहु को देख लिया। उन्होंने चौंक कर अपनी तलवारें खींच लीं और 'हेय' कहते हुए अपने घोड़ों की तरफ़

दौड़े ।

"सुबाहु ! जल्दी करो, हमें तुरन्त द्वार पार करना होगा । घोड़े को एक क्षण के लिए भी अटकने मत देना और दौड़ते हुए ही जो तुम्हारे घेरे में आजाये, तलवार से उसका सिर उड़ा देना ।" कहकर चंद्रवर्मा ने द्वार की तरफ़ अपना घोड़ा दौड़ाया ।

इस बीच शत्रु दल के तीन सैनिक अपने घोड़ों के पास पहुंच कर उन्हें खोलने लगे और दूसरे दो सैनिक उनका रास्ता रोक कर खड़े होगये, वे तलवार उठाकर जोर से चिल्ला उठे, "खबरदार ! रुक जाओ ! एक क़दम भी आगे बढ़े तो तुम्हारे प्राण खतरे में पड़ जायेंगे ।"

"देखो ! किसके प्राण ख़तरे में हैं !" यह कहकर सुबाहु ने तेज़ दौड़नेवाले अपने घोड़े को थोड़ा एक तरफ़ झुकाया और तलवार लम्बी कर सैनिक के सिर को धड़ से अलग कर दिया । दूसरे सैनिक पर चंद्रवर्मा ने अपनी तलवार टेढ़ी की, पर उस सैनिक ने कुछ फुर्ती दिखाई और खतरे को भांप कर झट से धरती पर औंधे मुंह लेट गया ।

इस बीच वे तीनों सैनिक अपने घोड़ों पर सवार होकर चंद्रवर्मा तथा सुबाहु का पीछा करने लगे ।

उन दोनों ने मुड़कर भी नहीं देखा और अपने घोड़ों को ऐड़ लगा कर द्वार लांघ लिया ।

आगे-आगे चंद्रवर्मा और पीछे-पीछे सुबाहु तेज़ गति से अपने घोड़े दौड़ाने लगे । उनके पीछे थोड़ी दूर पर शत्रु दल के वे तीनों सैनिक हो-हो की आवाज़ करते हुए चले आ रहे थे ।

"युवराज ! हमें किसी सुरक्षित जगह की आड़ में रुककर इन दुष्टों का अन्त करना शायद ज़्यादा ठीक होगा । ऐसा लगता है कि ये लोग हमारा पीछा नहीं छोड़ेंगे !" सुबाहु बोला ।

"हमारा रुक जाना ख़तरे से खाली नहीं होगा । निश्चित ही अब तक हमारे नगर से बाहर निकल जाने की ख़बर सर्पकेतु को मिल गयी होगी । वह हमें ख़त्म करने के लिए भारी सेना लेकर पीछे आ रहा होगा । थोड़ी दूर और इन सैनिकों को हमारा पीछा करने दो ! जब हम सामने दिखाई दे रही पहाड़ी-तलहटी में पहुंच जायेंगे, तो आसानी से इनका काम तमाम कर

देंगे। साथ ही यह भी हो सकता है कि शत्रु सैनिक यह सोच कर कि हम उन के चंगुल से बच कर भाग गये हैं, वे पीछे लौट जायें। यदि वे पीछे न भी लौटे तो हम कोई सुरक्षित स्थान पर उन पर हमला करके आसानी से उनका अन्त कर सकते हैं। अब हमारे और उनके बीच की दूरी कम होती जा रही है। इसलिए यहाँ पर रुकना किसी भी दृष्टि से देखा जाय, उचित नहीं है। इन कारणों से जितनी जल्दी हो सके, उतनी जल्दी हमें दूर भाग जाना चाहिए। तब एक जगह रुक कर हम निश्चिन्त हो अपने आगे के कार्यक्रम के बारे में विचार करेंगे।" चंद्रवर्मा ने कहा।

चंद्रवर्मा ने अपनी बात अभी पूरी ही की थी कि एक बाण सरसराता हुआ आया और उसके दायें कंधे को छूता हुआ निकल गया। "सुबाहु!" चंद्रवर्मा जोर से चिल्ला उठा और घोड़े की गरदन पर झुक कर लेट गया। सुबाहु ने देखा, दुश्मन का वह बाण मार्ग के एक तरफ़ गड़ गया था।

"युवराज! मैं अभी ज़िन्दा हूँ" यह कह कर सुबाहु घोड़े की अयाल पर झुक गया और अपना सिर पीछे की तरफ़ मोड़ उसने शत्रु की टोह लेने की कोशिश की। शत्रु सैनिकों में से एक के पास तीर-कमान था और वह घोड़े की लगाम को दांतों से कस कर पकड़ करके अपना निशाना साध रहा था। इसे देखकर सुबाहु सकते में आ गया, वह युवराज को सावधान करने ही जा रहा था कि उसने देखा कि उस अश्वारोही के घोड़े को ठोकर लगी और वह क्षण भर के लिए अपना संतुलन खो बैठा।
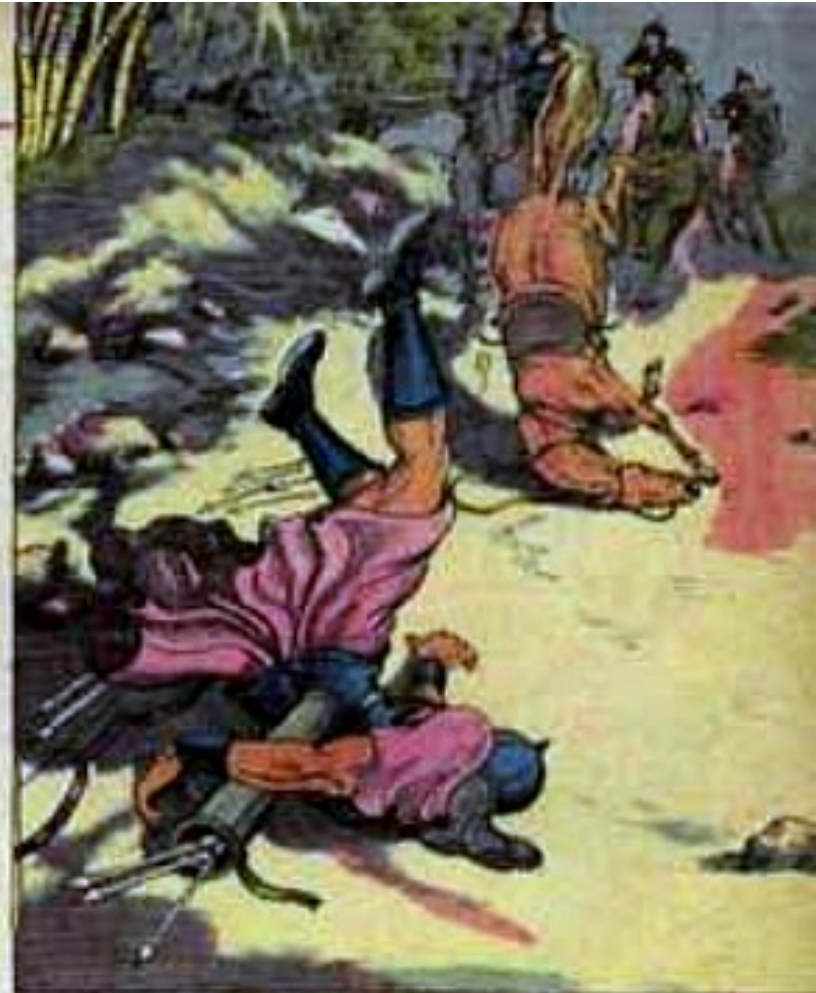
इसी बीच पीछे अंधाधुंध घोड़े दौड़ा रहे उन घुड़सवारों में से एक का घोड़ा गतिरोध आ जाने के कारण उस तीरकमान वाले के घोड़े से टकरा गया। वह तीरन्दाज सैनिक इस झटके को सम्हाल न सका और चार-पांच फुट ऊंचे हवा में उछल कर चिल्लाता हुआ मुंह के बल नीचे गिर पड़ा।

उसे खुद दुश्मन के दल के लोगों के घोड़ों ने वहीं कुचल दिया। सुबाहु खुशी से उछल पड़ा।

सुबाहु घोड़े पर तन कर बैठ गया। उसे

पक्का विश्वास था कि वे सैनिक अपने साथी को यों मरता न छोड़ेंगे और उनका पीछा छोड़ उसकी देखभाल के लिए, थोड़ी देर को ही सही, अपने साथी के पास रुकेंगे ।

पर वे उसकी मदद के लिए न रुके । सुबाहु की आशा निराशा में बदल गयी । शत्रु सैनिकों ने अपने साथी को पीछे मुड़कर भी नहीं देखा । वे लगातार वेग से उनके पीछे आ रहे थे । उनमें तीरन्दाज़ घुड़सवार सैनिक कोई नहीं था, इसलिए सुबाहु के दिल में फिर से जोश आ गया ।

वह बोला, "युवराज ! एक सैनिक जो धनुष लेकर हमारा पीछा कर रहा था, वह अपने पीछे आ रहे साथियों के घोड़ों के पैरों-तले कुचल कर मर गया है । अब वे तीन घुड़ सवार ही हमारा पीछा कर रहे हैं और शस्त्र के रूप में उनके पास एक-एक तलवार ही है । अगर आप चाहें तो हम थोड़ा रुक कर उनका ख़ात्मा कर सकते हैं ।"

चंद्रवर्मा ने भी मुड़कर पीछे दौड़ रहे उन तीन घुड़सवारों को देखा । उन्हें ख़त्म कर देना कोई ख़ास मुश्किल काम न था । पर अगर शत्रु के कुछ और सैनिक इस बीच पहुंच गये तो वे ख़तरे में पड़ जायेंगे । वह इस तरह सोचता हुआ, घोड़े की गति कुछ धीमी कर मार्ग के एक तरफ़ रुक गया ।

सुबाहु ने भी निकट आकर अपना घोड़ा रोक लिया । उन दोनों को अचानक यों रुका हुआ देख शत्रुदल के वे तीनों सैनिक भी लगाम खींच ठहर गये और चंद्रवर्मा एवं सुबाहु की तरफ़ देखते हुए आपस में कुछ फुस फुसाने लगे ।

"युवराज ! ऐसा लगता है, ये दुष्ट हमसे भिड़ने में हिचकिचा रहे हैं । क्यों न हम हिम्मत करके आगे बढ़ें और उनके पास पहुंच कर इनका ख़ात्मा कर दें ?" सुबाहु ने सुझाव दिया ।

युवराज ने फिर एक निगाह घुड़सवारों की तरफ़ डाली और बोला, "सुबाहु ! तुम ठीक कहते हो ! इन लोगों को मौत के घाट उतारने के बाद ही हम निरापद होकर आगे बढ़ सकेंगे । जल्दी करो, विलम्ब होने से कुछ और शत्रु सैनिक भी पहुंच सकते हैं ।" चंद्रवर्मा ने अपने

घोड़े को बड़ी तेज़ी से उन घुड़सवारों की तरफ़ दौड़ाया ।

चंद्रवर्मा और सुबहु को अपनी तरफ़ बढ़ते देख वे तीनों सैनिक झट से अपने घोड़े मोड़ नगर की तरफ़ सरपट दौड़ने लगे । चंद्रवर्मा ने अपने पंजों से घोड़े को टोका और घोड़ा भी अपने स्वामी का इशारा पा हवा से बात करने लगा ।

शत्रु सैनिकों ने भी अपने घोड़ों को ऐड़ लगा दी ।

शत्रु सैनिकों का पीछा करते हुए चंद्रवर्मा और सुबाहु काफ़ी दूर तक नगर की तरफ़ निकल आये । तभी उन्होंने देखा कि नगर की तरफ़ से कुछ और घुड़सवार इस दिशा में चले आ रहे हैं । उन्हें देखते ही चंद्रवर्मा ने अपने घोड़े को रोका और उसे पीछे मोड़ते हुए बोला, "सुबाहु ! दुश्मन की चाल समझ में आ गयी है । ये हमें नगर की तरफ़ खींच ला रहे थे । अब जल्दी लौटो, हमें यहां से निकल भागना बहुत ज़रूरी है । अगर हमने इन तीन सैनिकों से जूझने की कोशिश की तो शत्रु सेना आकर हमें घेर लेगी ।"

चंद्रवर्मा तथा सुबाहु अपने घोड़ों को मोड़कर पीछे की तरफ़ दौड़ने लगे । नगर-सीमा से बहुत दूर निकल जाने में ही सुरक्षा थी । शत्रु भी कब चूकनेवाले थे, वे भी उनका पीछा करने लगे । अब उन घुड़सवारों और चंद्रवर्मा तथा

सुबाहु के बीच की दूरी धीरे-धीरे कम होती जा रही थी ।

"युवराज ! इस बार हम सचमुच ख़तरे में फंस गये हैं ।" सुबाहु हांफते हुए बोला ।

चंद्रवर्मा ने कोई उत्तर नहीं दिया । सिर्फ़ हाथ से संकेत भर दिया, जिसका अर्थ था कि चुपचाप उसका अनुसरण करो ।

न भागने वालों को होश था, न पीछा करनेवालों को । इसलिए किसी का भी ध्यान इस बात पर नहीं गया कि वे किस रास्ते पर और किस तरफ़ आगे बढ़ रहे हैं । देखते-देखते मार्ग के दोनों किनारों के झाड़-झंखाड़ और टीले पीछे छूट गये । अब वे एक संकरे पहाड़ी रास्ते पर थे ।

चंद्रवर्मा और सुबाहु के घोड़े एक दम थक चुके थे। चंद्रवर्मा ने भांप लिया कि अब वे घोड़े बहुत देर तक उनका साथ नहीं दे पायेंगे। उसने शत्रु-सैनिकों की तरफ़ मुड़ कर देखा। उनके घोड़े भी हांफ रहे थे और उनके मुंह से झाग निकल रहा था। अब उसकी नज़र पहाड़ की तलहटी की तरफ़ गयी। लगभग आध कोस की दूरी से शत्रु सैनिक उनकी तरफ़ आ रहे थे।

"सुबाहु! अब हमें इन घोड़ों का भरोसा छोड़ देना चाहिए। ये घोड़े किसी भी क्षण ढह कर गिर सकते हैं। इसलिए अब हमें पैरों का सहारा लेना होगा। चलो, जितनी तेज़ हम दौड़ सकें, दौड़ चलें।" कहकर चंद्रवर्मा घोड़े से उतर पड़ा।

उसी क्षण शत्रु-सैनिकों ने भी अपने घोड़े छोड़ दिये और जोर-जोर से चिल्लाते हुए चंद्रवर्मा और सुबाहु के पीछे दौड़े।

चंद्रवर्मा ने एक बार चारों तरफ़ दृष्टि दौड़ायी और वहां की चट्टानों और वृक्षों की टहनियों को पकड़ कर नीचे उतरने लगा। सुबाहु भी उसके पीछे उतर रहा था। दोनों तलहटी की तरफ सावधानी से बढ़ रहे थे। तभी सीध में से दस-बारह सैनिक उनके सामने आ गये।

फिर भी अभी कुछ दूरी थी। उन सैनिकों में से एक ने ऊंचे स्वर से कहा, "इनका पीछा करना खतरे से ख़ाली नहीं है। अगर हमारे पैर फिसल गये तो हम तलहटी की नदी में जा पड़ेंगे। इसलिए यहीं रुको और इन पर पत्थरों और चट्टानों को लुढ़काओ!"

दूसरे ही क्षण बड़े-बड़े पत्थर और चट्टानें लुढ़क कर चंद्रवर्मा तथा सुबाहु की तरफ़ आने लगीं।

भाग्य से तब तक चंद्रवर्मा और सुबाहु पहाड़ी के तल तक पहुंच गये थे। चंद्रवर्मा ने ऊपर खड़े शत्रुओं पर एक निगाह डाली और सुबाहु से कहा, "अब हमारे सामने कोई दूसरा रास्ता नहीं है। तुम तैरना तो जानते हो न!" और पहाड़ी-तल में उफनकर बह रही नदी में छलांग मार कर कूद पड़े।

(क्रमशः)

कवियों की प्रतियोगिता

दृढ़व्रती राजा विक्रमार्क वृक्ष के पास लौट आये। उन्होंने वृक्ष पर से शव उतारा और उसे कंधे पर डाल सदा की भांति श्मशान की तरफ चलने लगे। तब शव में स्थित बेताल ने पूछा, "राजन्। मैं नहीं जानता, अत्यन्त श्रमसाध्य इस कार्य में आपको किसने प्रेरित किया ? फिर भी आप बताइये, इस कार्य की सफलता से आपको किस चीज़ की प्राप्ति होगी ? सम्पत्ति या यश ? या आप इन दोनों की कामना करते हैं ? एक व्यक्ति का इन दोनों के लिए आग्रह रखना कठिन है। विवेकशील मनुष्य इन दोनों में से किसी एक को प्राप्त करने में ही अपनी सारी शक्ति लगा देते हैं, वरना उन्हें समाज में अवहेलना का पात्र बनना पड़ता है। इस प्रसंग में मैं आपको दो कवि पंडितों की कहानी सुनाता हूं। श्रम को भुलाने के लिए सुनिये !"

बेताल ने कहानी सुनायीः

बेताल कथा

किसी जमाने में प्रसन्न नाम का एक कवि अपनी कविता के बल कर राजाश्रय प्राप्त करने के विचार से पाटलिपुत्र पहुंचा । उन दिनों पाटलिपुत्र पर राजा महासार राज्य करते थे। वे साहित्य के बड़े प्रेमी थे। वे कवि, पंडित और कलाकारों को अपने दरबार में आश्रय देते थे। उन की कविता पर प्रसन्न होकर उन्हें पुरस्कार भी दिया करते थे। इस कारण से उनकी ख्याति दूर तक फैल गई थी ।

राजा महासार की यह ख्याति सुन कर एक बार प्रसन्न नामक कवि उन से मिलने आया। लेकिन उसको राजा के दर्शन प्राप्त नहीं हुए। फिर भी प्रसन्न ने राजा के दर्शन करने के लिए अनेक प्रयत्न किये । लेकिन राजभटों के अवरोध के कारण उसके सारे प्रयत्न विफल होगये। हार कर उसने अपनी यह व्यथा एक दिन एक जौहरी को सुनायी ।

जौहरी ने प्रसन्न की व्यथा सुनकर कहा, "कविवर ! मैं केवल हीरों का पारखी हूं और उन का मूल्य जानता हूं, लेकिन कविता का नहीं । आपको राजा के दर्शन करा सकूं, ऐसी सामर्थ्य मेरी नहीं है । इसलिए आप राजभटों को रिश्वत देकर राजा के दर्शन पाने का प्रयत्न कीजिए ! मेरा विश्वास है कि ऐसा करने पर आप को अवश्य राजा के दर्शन मिल सकते हैं । अन्य उपायों से शायद ही आप को राजा से मिलने का मौक़ा प्राप्त होगा ।"

हीरों के व्यापारी का यह उत्तर सुनकर कवि जोश में आगया और उसने एक आशु कविता सुनायी। उसका भाव यह था— 'राजभटों को रिश्वत देनेवाले कवियों की कविता सुननेवाले राजा को अपनी कविता न सुनाना ही ज़्यादा श्रेयस्कर है ।'

जौहरी उस कविता का अर्थ पूरा-पूरा नहीं समझ पाया । पर उसी समय उस दूकान में प्रवेश कर रहे देवीदास ने वह कविता सुन ली। देवीदास राजा महासार का दरबारी कवि था। लोगों का कहना था कि देवीदास की जिह्वा पर सरस्वती विराजती है । सबको समान रूप से आनन्दित करनेवाले देवीदास का राज्य में पंडित और पामर सभी लोग उनका अत्यन्त आदर करते थे ।

देवीदास को देखते ही जौहरी ने आदरपूर्वक

उसका स्वागत किया। देवीदास ने जौहरी को इशारे से मना कर दिया कि वह इस नये आगन्तुक कवि को उसका असली परिचय न दे और फिर प्रसन्न की तरफ़ मुड़कर कहा, "आप तो देखने में एक महाकवि जैसे लगते हैं। राजा का दर्शन करने के लिए आपको दरबार के राजभटों का नहीं, बल्कि राजा का ही आश्रय लेना चाहिए।"

देवीदास की सलाह के उत्तर में प्रसन्न ने एक और कविता सुनायी। उस कविता का आशय था कि कवि प्रसन्न की कविता सुनने पर राजा को अनुभव होगा कि आज तक उन्होंने केवल नीरस कविता ही सुनी है, इसलिए वे अपने अन्य दरबारी कवियों को हटाकर उनके स्थान पर प्रसन्न को ही आसीन करेंगे। यही वह डर है जिसके कारण राजदरबारी कवि प्रसन्न को राजा के दर्शन का मौक़ा नहीं देते।

देवीदास ने धीमे से तालियां बजाकर कहा, "वास्तव में आपकी कविता अत्यन्त प्रशंसनीय है। लेकिन महाराजा महासार के दरबारी कवियों के बारे में आपकी धारणा गलत है। मैं स्वयं आपको राजा के दर्शन करा सकता हूं।" यह कहकर देवीदास ने प्रसन्न को अपना परिचय दिया।

प्रसन्न देवीदास का परिचय पाकर घबरा गया और बोला, "महानुभाव! आपसे परिचित न होने के कारण मेरे मुंह में जो आया, मैंने बक दिया। पर सच मानिये, मैं आपके प्रति गुरु का भाव रखता हूँ। मैं ने आप की प्रतिभा और यश के बारे में अनेक लोगों के मुँह से सुना है। आप की कविता पढ़ने का मुझे मौक़ा भी मिला है। यह मेरा अहो भाग्य है कि आज प्रत्यक्ष रूप से आप के दर्शन का भाग्य मुझे प्राप्त हुआ। इसलिए सचमुच मैं अपने को धन्य मानता हूँ! इसलिए मेरी इस भूल को कृपया क्षमा कर दीजिए!"

"कविता में अतिशयोक्ति भी एक अलंकार का नाम है," देवीदास ने चुटकी ली और फिर प्रसन्न को साथ लेकर राजा महासार के पास पहुंचा। देवीदास ने राजा को बताया कि प्रसन्न से उसका परिचय किस तरह हुआ।

राजा महासार खुश होकर प्रसन्न से बोले, "कविवर! यदि आपने देवीदास की प्रशंसा

प्राप्त कर ली है तो आपको निश्चय ही महाकवि होना चाहिए। इस में तनिक भी मेरा संदेह नहीं है।'' इस प्रकार प्रसन्न की प्रशंसा कर राजा ने उसे अपने दरबार में आश्रय दिया।

प्रसन्न ने राजदरबार में अपनी प्रतिभा के कारण से अच्छा यश प्राप्त किया। लोगों में यह बात प्रसिद्ध होगयी कि देवीदास का समकक्ष कवि प्रसन्न ही है।

एक बार उस प्रदेश में किसी बात को लेकर धार्मिक कलह आरम्भ हुआ। जनता अपने को वीर शैव, वीर वैष्णव, बौद्ध और जैन मतावलम्बी कह कर आपस में कलह करने लगी। कलह ने हिंसाकांड का रूप ले लिया। राजा महासार ने जनता की विचारधारा में परिवर्तन लाने की तमाम कोशिशें कीं, पर कोई नतीजा न निकला।

तब महासार के मंत्री ने राजा को सुझाव दिया, ''महाराज! श्रेष्ठ साहित्य जनता की विचारधारा को बदल सकता है। वेद इस बात की घोषणा करते हैं कि परमात्मा एक है। सब लोग वेदों का आदर करते हैं, इसलिए ऐसा साहित्य रचा जाना चाहिए, जो वेदों के सारतत्व को लोकभाषा में प्रस्तुत कर सके। इससे अवश्य ही जनता के विचारों में परिवर्तन आयेगा।''

राजा महासार को मंत्री की बात पसंद आयी। उन्हें लगा कि इस काम को अकेला देवीदास ही कर सकता है। लेकिन मंत्री ने सलाह दी, ''वेदों के सार तत्व को लोकभाषा में प्रस्तुत करना एक आदमी के वश की बात नहीं

है। मैंने सुना है कि प्रसन्न भी देवीदास जैसा ही समर्थ कवि है। इसलिए आप इस काम का उत्तरदायित्व इन दोनों महाकवियों को सौंप दीजिए।"

मंत्री की बात मानकर महासार ने दोनों कवियों को बुलवा भेजा और यह कार्य उन दोनों को सौंप दिया।

राजा का आदेश पाकर प्रसन्न बोला, "महाराज! वेद के सार को साधारण प्रजा की समझ के लायक़ बनाना है तो यह ज़रूरी है कि पहले हम उसे पूर्ण रूप से हृदयंगम कर लें। यह काम एक-दो कवियों के वश का नहीं है। महापंडितों के साथ चर्चा, विचार विमर्श करने के बाद काव्य-रचना में प्रवृत्त होना ज्यादा उचित होगा।"

देविदास का मत इसके विपरीत था। उसने कहा, "महाराज! मुझे इस कार्य में किसी की मदद की आवश्यकता नहीं है। मैं अकेला ही यह काम संपन्न कर लूंगा। मुझे दो महीनों की अवधि प्रदान कीजिए!"

राजा महासार ने यह कार्य दोनों कवियों को सौंपते हुए कहा, "आप दोनों में से जो भी इस कार्य को पहले पूरा कर लेगा, मैं उसे एक लाख मुद्राएं पुरस्कार में दूंगा।"

दोनों कवियों ने अपना कार्य प्रारम्भ कर दिया। देवीदास संस्कृत का महान पंडित था। वह कठिन से कठिन विषय को भी आसानी से समझ लेता था। उसने वेदों का मनन कर लोकभाषा में काव्य-रचना आरम्भ कर दी। योजना से दो सप्ताह पहले ही उसकी रचना पूरी
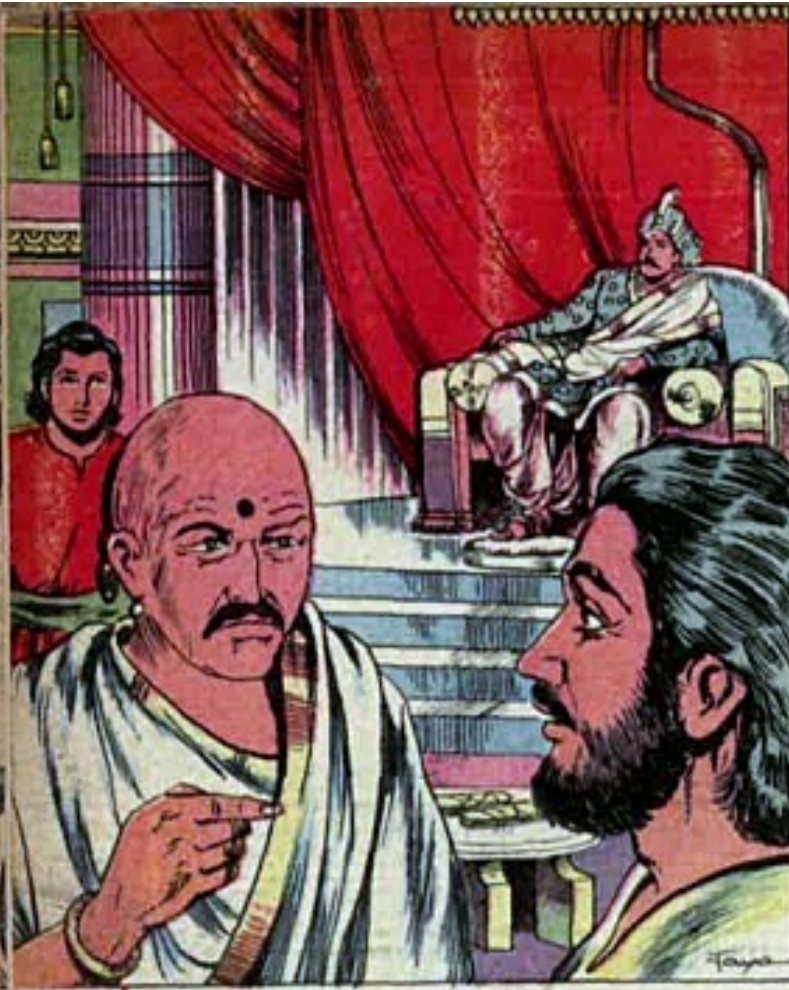
हो गयी ।

उधर कवि प्रसन्न संस्कृत तो जानता था, लेकिन भाषा का पंडित नहीं था । उसने कुछ विद्वानों से सम्पर्क किया और उनके मुंह से वेद-सार समझकर तब अपनी काव्य-रचना लोकभाषा में प्रारम्भ की ।

देवीदास प्रसन्न की काव्य-रचना के सम्बन्ध में दूसरों के द्वारा जानकारी हासिल करता रहा । वह सोचने लगा, 'मैंने प्रसन्न से दो सप्ताह पहले अपना काव्य पूरा किया', वह इस बात को विशेष महत्व नहीं दे रहा था । पर वह चाहता था कि लोगों के सामने यह साबित हो जाये कि प्रसन्न उसके समकक्ष काव्य-रचना करने में समर्थ नहीं है और देवीदास उससे श्रेष्ठ कवि है ।

अपनी इसी प्रयोजन-सिद्धि के लिए देवीदास प्रसन्न की काव्य-रचना पूरी होने तक रुका रहा । कार्य पूरा होने पर वह प्रसन्न के साथ राजा के पास पहुंचा और बोला, "महाराज ! मैंने और प्रसन्न ने करीब-करीब एक ही समय में अपनी रचनाएं पूरी की हैं । इसलिए हम दोनों के काव्यों में से जो काव्य भी आपको श्रेष्ठ लगे, उसे पुरस्कार दे दीजिए ।"

इस शर्त पर पुरस्कार का निर्णय करना राजा महासार के लिए एक जटिल समस्या बन गया । इससे पहले जब कभी उत्तम रचना का चुनाव करना होता था तो महासार देवीदास की सहायता लिया करते थे । अब स्वयं देवीदास की रचना प्रतियोगिता में आगयी तो उसका निर्णय कौन करे ?

ऐसी कठिन स्थिति में संयोग से समस्त विद्याओं के ज्ञाता चिरंजीवी नाम के एक विद्वान देशाटन करते हुए पाटलिपुत्र आ पहुंचे । राजा महासार ने उनका स्वागत-सत्कार किया और उनके समक्ष अपनी समस्या रखकर श्रेष्ठ रचना के चुनाव में निर्णायक बनने का अनुरोध किया ।

चिरंजीवी ने दोनों काव्यों का पूरी तरह अध्ययन-मनन कर बताया, "महाराज ! ये दोनों काव्य समान कोटि के हैं और श्रेष्ठ हैं । दोनों को ही पुरस्कार प्रदान कीजिए ।"

यह निर्णय देवीदास को स्वीकार नहीं हुआ, वह बोला, "मेरा काव्य पूरी तरह मेरी ही रचना है । वैसे भी मैंने प्रसन्न से दो सप्ताह पहले

अपना काव्य समाप्त कर लिया था, लेकिन प्रसन्न को अवसर देने के विचार से मैं दो सप्ताह रुका रहा। प्रसन्न की रचना पूरी तरह स्वतंत्र रचना नहीं है। उसने अनेक विद्वानों से वेद-चर्चा करके तब काव्य-रचना की है। इसलिए पुरस्कार का समुचित निर्णय करते समय आप इन दोनों बातों को भी ध्यान में रखिए।"

चिरंजीवी ने विस्मयपूर्वक पूछा, "क्या तुमने अकेले ही इतने कम समय में वेदों के सार को काव्य का रूप दिया है? यह बात विश्वास करने योग्य प्रतीत नहीं होती।"

देवीदास ने कुछ गर्व से उत्तर दिया, "मैंने इससे भी ज्यादा अनेक अद्भुत कार्य किये हैं। इसके अतिरिक्त मैंने एक साल में 'महाभारत' तथा दो साल में 'अठारह पुराणों' का अनुवाद किया है।"

राजा महासार ने कहा, "देवीदास का कथन पूर्ण सत्य है।"

"फिर भी मेरी एक जिज्ञासा है। जब आपने दो सप्ताह पहले अर्थात् डेढ़ माह में काव्य-रचना पूरी कर ली थी, तो तभी पुरस्कार की मांग क्यों नहीं की?" चिरंजीवी ने पूछा।

"काव्य-लक्षणों का पूरा ज्ञान रखनेवाले व्यक्ति ही मेरे और प्रसन्न के काव्य का अन्तर समझ सकते हैं। पुरस्कार न मांगने में मेरा एक ही उद्देश्य था कि जल्दी रचना समाप्त करने के लिए नहीं, बल्कि श्रेष्ठ रचना के लिए मैं पुरस्कार प्राप्त करूं!" देवीदास बोला।

"इस विषय में आपका क्या विचार है?" चिरंजीवी ने प्रसन्न को लक्ष्य करके पूछा।

"महानुभाव! संस्कृत में मेरी योग्यता देवीदास के समकक्ष नहीं है। पांडित्य की दृष्टि से मैं सदा ही उनसे छोटा हूं। मैंने पुरस्कार पाने के लिए नहीं, बल्कि जनहित को दृष्टि में रखकर उपयोगिता के ख्याल से इस काव्य की रचना की है। आपके इस विचार से मुझे आश्चर्य हो रहा है कि मेरा काव्य देवीदास के काव्य के समकक्ष है। तो क्या मैं देवीदास जैसा समर्थ कवि बन गया हूं? देवीदास तो मेरे लिए गुरुतुल्य हैं।" प्रसन्न ने विनीत स्वर में उत्तर दिया।

इस पर चिरंजीवी ने अपना निर्णय सुना दिया और राजा महासार से पुरस्कार की पूरी राशि

प्रसन्न को देने का आग्रह किया । राजा ने चिरंजीवी के निर्णय का पालन किया ।

बेताल ने यह कहानी सुनाकर कहा, "राजन्, राजा महासार ने चिरंजीवी के निर्णय का पालन किया, इस कारण महापंडित कवि देवीदास के प्रति अन्याय हो जाता है । इस मामले में चिरंजीवी के पक्षपात का कारण क्या है ? उन्होंने देवीदास से कम प्रतिभाशाली कवि प्रसन्न को पुरस्कार क्यों दिलाया ? इस शंका का समाधान अगर आप जानकर भी न करेंगे तो आपका यह सिर फट कर टुकड़े-टुकड़े हो जायेगा ।"

विक्रमार्क ने उत्तर दिया, "इसमें सन्देह नहीं कि देवीदास उत्तम कवि है । पर प्रसन्न ने भी प्रतियोगिता में समान स्तर का स्पर्श करनेवा-ले-काव्य की रचना करके अपनी पात्रता प्रमाणित की है । इसलिए दोनों ही समान स्तर के कवि हैं । अब प्रश्न यह उठता है कि पुरस्कार किसे दिया जाये । दोनों कवियों की समीक्षा करने पर एक बात स्पष्ट हो जाती है । देवीदास अपनी प्रतिभा की स्वयं प्रशंसा करता है, साथ ही उसे इस बात का अहंकार भी है कि उससे बढ़कर कोई कवि नहीं है । यह देवीदास के पतन को सूचित करता है । उसे पुरस्कार मिलना ही चाहिए, देवीदास के इस आग्रह और हठ से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि उसके अन्दर यश के साथ-साथ धन का भी लालच है । ऐसा व्यक्ति अब नीचे ही फिसल सकता है, ऊपर नहीं चढ़ सकता । पर प्रसन्न के अन्दर विनय है । वह और ऊंचाइयों को प्राप्त कर सकता है । ऐसी स्थिति में जब समान स्तरवाले दो कवियों में चुनाव करना हो तो पतन के खड्ड में गिरने के लिए तैयार कवि की बनिस्पत, और ऊंचाइयों को पा सकनेवाले कवि को पुरस्कार देना सभी प्रकार से न्याय संगत है । चिरंजीवी ने यही काम किया । उनमें किसी प्रकार की पक्षपात-भावना नहीं है ।"

राजा का मौनभंग होते ही बेताल शव के साथ गायब होकर फिर पेड़ पर जा बैठा ।

(कल्पित)

सहनशीलता में स्वार्थ

किसी गांव में दो दोस्त रहते थे। एक का नाम था रामानन्द और दूसरे का चंद्रकान्त। उनमें इतनी गहरी दोस्ती थी कि देखने वाले उन्हें सगे भाई समझने लगते थे और उनकी दोस्ती पर ईर्ष्या करने लगते थे। फिर भी दोनों का स्वभाव अलग था। चंद्रकान्त जल्दबाज था और अक्सर लोगों से झगड़ पड़ता था। लेकिन रामानन्द शान्त स्वभाव का था, पर वह अपने दोस्त के मामलों में दखल न देता था।

एक दिन चंद्रकान्त के घर दावत थी। विश्वम्भर नाम के एक आदमी को भी निमंत्रण मिला। विश्वम्भर अपने तुनक मिजाज के लिए पूरे गांव में मशहूर था। वह छोटे-बड़े का ख्याल किये बिना बड़ी ऐंठ से सामनेवाले आदमी का मज़ाक उड़ाता, फिर ज़रा सी बात होने पर चिढ़ बैठता। विश्वम्भर किसी से व्यवहार की बात कर रहे चंद्रकान्त के पास पहुंचा।

रामानन्द किसी काम में व्यस्त था, इसलिए उसने चंद्रकान्त और विश्वम्भर को एक जगह पहुंचते हुए न देखा। रामानन्द अच्छी तरह जानता था कि ये दोनों चिड़चिड़े मिजाज़ के हैं, इसलिए वह उन्हें ज़्यादा देर तक बात करने का मौक़ा नहीं देता था।

विश्वम्भर ने चंद्रकान्त से बातचीत के सिलसिले में पूछा, "दोस्त! तुमने भारी दावत और मनोरंजन का आयोजन किया है। क्या इस साल अच्छी पैदावार हुई है?"

"ऐसा तो कुछ नहीं। मैंने इसलिए इस दावत और मनोरंजन का आयोजन किया कि मेरी फ़सल पर किसी की नज़र न लग जाये!"

यह जवाब पाकर विश्वम्भर तिलमिला उठा। क्षण भर रुककर वह बोला, "जब लोगों की नज़र लग ही जाती है, तब चाहे भारी दावत दो, चाहे मनोरंजन का प्रबन्ध करो, उसका बुरा

गणेश वर्मा

असर नहीं जाता। इसीलिए इस साल मेरे खेतों में अच्छी फ़सल नहीं हुई ।"

"तो इसका मतलब है, तुम्हारे खेतों को मेरी नज़र लग गयी है ?" चंद्रकान्त ने क्रोधित होकर कहा ।

"मैंने यह बात नहीं कही। तुमने ही पहले मेरी नज़र लगने के बारे में कहा।" विश्वम्भर तैश में आकर बोला ।

इस बात को लेकर उन दोनों के बीच झगड़ा शुरू हो गया। दावत में आये सारे मेहमान उनके चारों तरफ़ इकट्ठा हो गये। रामानन्द जल्दी से वहां पहुंचा और सारी बात जानकर बीच-बचाव करने के ख्याल से बोला, "चंद्रकान्त ! यह तुम्हारा घर है। घर आये मेहमान की इज्जत करना तुम्हारा फर्ज़ है। जब तुम दोनों ही आपस में छेड़खानी करते रहते हो, तो उसे उसी वक्त भूल भी जाना चाहिए !"

रामानन्द ने जिस ढंग से चंद्रकान्त को समझाया, उसके तरीके की सब मेहमानों ने सराहना की ।

उस वक्त तो झगड़ा ख़त्म हो गया, लेकिन चंद्रकान्त के अन्दर गांठ पड़ गयी, उसने उस दिन से रामानन्द से बोलचाल बन्द कर दी। एकाध बार रामानन्द ने चंद्रकान्त के साथ बात करने की कोशिश भी की तो चंद्रकान्त ने मुंह मोड़ लिया ।

अपने दोस्त के इस व्यवहार का कारण रामानन्द की समझ में न आया। वह एक दिन चंद्रकान्त के घर पहुंचा और उसकी पत्नी से पूछा, "भाभी ! चंद्रकान्त मुझे देखते ही अपना मुंह मोड़ लेते हैं। आख़िर बात क्या है ?"

"वे तो तुम पर नाराज़ हैं। कह रहे थे कि सब मेहमानों के बीच तुमने उनके व्यवहार की आलोचना करके उन्हें उपदेश दिया है और वे इस अपमान को अब जीवन भर नहीं भूल सकेंगे।" चंद्रकान्त की पत्नी ने कहा ।

"हम दोनों कई बरसों से सगे भाइयों जैसे रहते आये हैं। अगर उसे मेरी बात अच्छी नहीं लगी थी तो वह मुझे समझा सकता था, धमका सकता था। लेकिन इस तरह पुरानी दोस्ती तोड़ने के लिए तैयार कैसे हो गया ?" रामानन्द ने दुख और आश्चर्य से कहा ।

"तुम उनका मिजाज तो जानते ही हो। अगर उन्हें यह भी मालूम हो गया कि तुम यहां मुझसे मिलने आये थे तो वे बिगड़ सकते हैं। इसलिए जो कांटा उनके मन में गड़ गया है, उसे निकालने का तुम्हीं कोई उपाय करो।" चंद्रकान्त की पत्नी बोली।

इस घटना के कुछ दिन बाद चंद्रकान्त का बेटा अचानक किसी विचित्र बीमारी का शिकार हो गया। कई वैद्यों का इलाज कराया गया, पर कोई फ़ायदा न हुआ। रामानन्द थोड़ी-बहुत दवा-दारू करना जानता था। कुछ लोगों ने चंद्रकान्त को सुझाया भी कि रामानन्द की दवा देकर क्यों नहीं देखते, पर उसने इस बात पर कोई ध्यान नहीं दिया।

ऐसी ही स्थितियों में एक दिन चंद्रकान्त के घर एक बैरागी आया। चंद्रकान्त ने बड़े अदब से बैरागी को प्रणाम किया और अपने बेटे की हालत बतायी।

बैरागी ने लड़के की जांच की और बोले, "तुम निरे स्वार्थी हो! अपने हितैषियों को तुम अपने से ज़्यादा सुखी और सम्पन्न नहीं देख सकते। तुम्हारे अन्दर तनिक भी सहनशीलता नहीं है। अगर कोई मित्र तुमसे हित की बात भी करता है तो तुम्हें उसकी बातें पसन्द नहीं आतीं। तुम्हारे अपने ही दुर्गुण तुम्हारे परिवार को रोग बनकर सता रहे हैं।"

"महात्मा! किसी ने आपको मेरे बारे में गलत बातें बता दी हैं। अगर मैं सच कहूँ तो मेरे अन्दर जो सहनशीलता है, वह शायद ही किसी में हो। मैं अपने बेटे के लिए सब कुछ करने को तैयार हूं। आप आदेश देकर मेरी परीक्षा लीजिए!" चंद्रकान्त ने कहा।

"तो सुनो! यहां से दस कोस दूर शिव का एक मंदिर है। तुम अकेले पैदल जाओ और भगवान के दर्शन करके तुरन्त लौट आओ। मैं तुम्हारे हाथ जो दवा की पुड़िया दे रहा हूं, इसे वहां चढ़ाकर ले लेना। यही दवा भगवान का प्रसाद बनकर तुम्हारे बेटे की बीमारी दूर कर देगी!" बैरागी ने सब समझा दिया।

चंद्रकान्त ने बैरागी की बात मान ली और कहा, 'स्वामी! मैं आपके आदेश का पालन करूँगा।"

"दस कोस जाना मेहनत का काम है । लेकिन याद रखो, चलते वक्त तुम्हारे अन्दर थोड़ी भी खीज पैदा नहीं होनी चाहिए। रास्ते में तुम्हें कहीं आराम भी नहीं करना है । भगवान के दर्शन करते ही तुम्हें तुरन्त फिर वापस घर लौटना है । समझें !" बैरागी ने स्पष्ट किया ।

चंद्रकान्त ने बैरागी की आज्ञा को पूरा-पूरा स्वीकार कर लिया । वह दवा की पुड़िया लेकर उसी वक्त भगवान का दर्शन करने चल पड़ा । उसने कहीं भी विश्राम नहीं किया और उसी रात घर लौट आया ।

बैरागी घर पर ही बैठे हुए थे । उन्होंने अपनी चकित दृष्टि चंद्रकान्त की तरफ़ दौड़ायी और पूछा, "तुम इतनी जल्दी लौट आये ? मंदिर तक जाकर भगवान के दर्शन करके भी आये हो या नहीं ?"

मैं अपने बेटे को बचाने के लिए दौड़ा-दौड़ा गया-आया हूं ।" चंद्रकान्त ने उत्तर दिया ।

"तुमने कहीं किसी पर खीज तो प्रकट नहीं की न ?" बैरागी ने फिर सवाल किया ।

"नहीं, नहीं महाराज ! क्या मैं यह दवा अब अपने बेटे को खिला दूं ?" चंद्रकान्त ने शीघ्रता दिखाते हुए पूछा ।

"नहीं, नहीं ! तुम स्वार्थी हो ! जब तक तुम उस स्वार्थ से मुक्त न होओगे, तब तक तुम्हारे बेटे की बीमारी बनी रहेगी ।" बैरागी ने गंभीर होकर कहा ।

"महात्मा ! आप यह क्या कह रहे हैं ? मैं अपने बेटे की ख़ातिर एक दिन में बीस कोस चल कर आया हूं । ऐसी हालत में मैं स्वार्थी कैसे हो सकता हूं ? स्वार्थी के अन्दर क्या ऐसी सहशीलता हो सकती है ?" चंद्रकान्त ने कुछ खिन्न होकर कहा ।

"सुनो बेटा ! ईश्वर हमारी आंखों को दिखाई नहीं देते । मंदिर में ईश्वर की केवल पाषाण-प्रतिभा है । मैं तुम्हारे लिए पूरी तरह अपरिचित हूं, फिर भी तुमने भगवान, मन्दिर और मुझमें विश्वास करके इतनी सहनशीलता दिखायी है । है न ?" बैरागी ने कहा ।

"जी हाँ, महाराज !" चंद्रकान्त ने स्वीकार किया ।

बैरागी गंभीर होकर बोले, "तुममें जब इतनी सहनशीलता भरी हुई है, तब यही सहन शीलता तुम अपने साथियों के प्रति क्यों नहीं प्रदर्शित करते ? तुम्हारी इस समय की सहन शीलता तुम्हारे अपने स्वार्थ के कारण से है। तुम्हारा स्वार्थ था तो तुमने पाषाण-प्रतिमा के प्रति भी सहनशीलता दिखायी, पर स्वार्थ न होने पर तुम अपनी आंखों के सामने दिखाई देनेवाले मनुष्य के प्रति भी न विश्वास प्रदर्शित कर सके, न सहनशीलता ही। ऐसा क्यों ?"

"महात्मा ! यह झूठ है। मैं सब लोगों के प्रति समान रूप से सहनशीलता का व्यवहार करता हूं। जो खुद सहनशील नहीं हैं, वे ही मेरे अन्दर सहनशीलता की कमी बता सकते हैं।" चंद्रकान्त बोला।

"अगर यह बात सच है तो मैंने व्यर्थ ही तुम्हें इतनी दूर पैदल चल कर आने का कष्ट दिया।" कहकर बैरागी ने अपनी दाढ़ी व मूँछें हटा दीं।

बैरागी के वेश में आया वह व्यक्ति और कोई नहीं, खुद रामानन्द था।

उसे देख, अचरज में भर कर चंद्रकान्त बोला, "अरे तुम !"

"हां, मैं ! भाभी की मदद से मैंने ही यह सारा स्वांग रचा है। वास्तव में तुम्हारा बेटा बीमार नहीं है। मेरी छोटी-सी बात को इतनी बड़ी भूल समझकर तुमने सदा के लिए हमारी इतनी पुरानी मैत्री को तोड़ देने की कोशिश की। उसी मैत्री को कायम रखने के लिए मैंने यह नाटक रचा है।" रामानन्द ने कहा।

चंद्रकान्त को अपनी गलती का एहसास हुआ। वह नम्र शब्दों में बोला, "तुमने मेरी मैत्री को बनाये रखने के लिए यह नाटक रचा है। मैं सचमुच ही भविष्य में यह ख्याल रखूंगा कि मुझसे कभी कोई गलती न हो। मैं अपने अन्दर निस्वार्थ सहनशीलता के भाव को पैदा करने की कोशिश करूंगा।"

इसके बाद वे दोनों दोस्त सगे भाइयों से भी बढ़कर परस्पर अपनत्व बनाये रखते हुए बहुत बरसों तक जीवित रहे।

शराब का नतीजा

ब्रह्मदत्त जिन दिनों काशी के राजा थे, उन्हीं दिनों पंडित वंश के रूप में विख्यात एक ब्राह्मण परिवार में बोधिसत्व ने जन्म लिया। बीस वर्ष की आयु तक पहुँचते-पहुँचते उन्होंने समस्त शास्त्रों का अध्ययन कर लिया और महापंडित के रूप में विख्यात हो गये।

माता-पिता ने बोधिसत्व का विवाह करना चाहा, पर उन्होंने विवाह करने से स्वीकार नहीं किया, उल्टे संन्यास लेकर हिमालय पर चले गये और वहां एक सुन्दर आश्रम बनाकर निवास करने लगे।

एक बार बोधिसत्व ने वर्षा ऋतु के चार महीने श्रावस्ती नगर में बिताये। इसके बाद वे अपने शिष्यों के साथ भद्रवती नाम के गांव में पहुंचे। वहां से थोड़ी दूर एक नदी थी और अंबतीर्थ नाम का एक प्रसिद्ध तीर्थ भी था। वे अपने शिष्यों के साथ उस तीर्थ की तरफ़ चल पड़े।

उस तीर्थ के किनारे एक मुनि का आश्रम था और उस आश्रम में अंबक कीर्तिक नाम का एक ज़हरीला सांप भी रहता था। उस सांप का समाचार सुनाकर गांव के निवासियों ने बोधिसत्व से अनुरोध किया कि वे उस आश्रम के अन्दर न जायें। उनके अनुरोध पर बोधिसत्व ने कोई प्रतिक्रिया व्यक्त नहीं की और मौन बने रहे।

बोधिसत्व के शिष्यों में एक शिष्य का नाम सागत स्थविर था। वह मंत्रशास्त्र में प्रवीण था, साथ ही असाधारण साहसी भी था। वह बोधिसत्व और दूसरे गुरु भाइयों से अलग होकर अकेला मुनि के आश्रम में चला गया।

उस समय आश्रम में मुनि न थे। सागत स्थविर ने आश्रम में प्रवेश किया और एक स्थान पर चटाई बिछाकर बैठ गया। उसी समय एक भयंकर जहरीला सांप निकला और अपना फण उठाकर सामने खड़ा हो गया।

सागत स्थविर ज़रा भी विचलित न हुआ। उसने सर्प से पूछा, "क्या तुम्हारा ही नाम अंबक कीर्तिक है ?"

यह सवाल सुनते ही सर्प फुत्कारने लगा। उसके मुंह से काला धुआं निकल आया। स्थविर ने भी अपने मुंह से धुआं निकाला। इस पर सर्प के मुंह से आग के शोले निकलने लगे। स्थविर ने भी अपने मुंह से आग के शोले निकाले।

इस तरह चार-पांच मिनट तक स्थविर और विषैले सर्प के बीच अपनी-अपनी शक्ति एवं सामर्थ्य का प्रदर्शन चला। स्थविर की निडरता देख कर उस विषैले सर्प ने अपना फण झुका लिया और लाचार होकर पीछे की ओर लौट पड़ा। स्थविर ने उसकी पूँछ पकड़ कर उसे पीछे खींच लिया।

"अंबक कीर्तिक ! मैं जानता हूं कि इस तीर्थ में स्नान करने के लिए आये हुए कई लोग तुम्हारे डसने के कारण मर गये हैं !" और इतना कह स्थविर ने विष-सर्प के विषैल दांत बाहर निकाल लिये और उसे जीवित छोड़ दिया।

इस घटना के एक पखवारे के बाद बोधिसत्व भद्रवती को छोड़ कौशाम्बी नगर में पहुँचे। बोधिसत्व के एक शिष्य ने अंबक कीर्तिक जैसे जहरीले सर्प के दांत निकाल लिये हैं, यह समाचार आस पास के गांवों और नगरों में आग की तरह फैल गया था। कौशाम्बी के निवासियों ने बोधिसत्व का अभूतपूर्व स्वागत किया और एक विशाल उद्यान में उनके ठहरने का प्रबन्ध किया।

दूसरे दिन सुबह-सुबह नगर के कुछ निवासियों ने बोधिसत्व के दर्शन किये। इसके बाद वे स्थविर के पास पहुँचे, जो अपने कुछ गुरुभाइयों के साथ एक पेड़ की छाया में बैठा हुआ था। उन्होंने उसे प्रणाम किया और पूछा, "आप तो सुदूर हिमालय में निवास करने वाले हैं। वहां आपको हर आवश्यक चीज़ का मिलना तो दुर्लभ है। अगर आपको किसी ऐसी वस्तु की इच्छा हो तो आज्ञा दें, हम तुरन्त ला देंगे।"

स्थविर मौन रहा।

इस पर बोधिसत्व के दूसरे दो शिष्य बोले,

"भद्रजनो ! हम पारावत मदिरा का सेवन करना चाहते हैं । हमें आज तक वह प्राप्त नहीं हो सकी । इसलिए वह मदिरा तैयार करवाकर हमारे पास भेजने की कृपा करें !"

नगर-निवासियों ने बोधिसत्व के शिष्यों की बात मान ली । उन्होंने दोपहर होने तक पारावत मदिरा तैयार की और एक गृहस्थ के घर में छिपाकर वे स्थविर को वहां लिवा लाये ।

स्थविर ने पारावत मदिरा का पान करना आरम्भ किया । धीरे-धीरे उसे मदिरा का नशा चढ़ गया । वह नशे में ही उठा और नगर के द्वार की तरफ दौड़कर वहां गिर गया । उसके साथी उसे कंधों पर उठाकर बोधिसत्व के पास ले गये और उसे उनके चरणों के पास इस तरह लिटा दिया कि उसका मस्तक बोधिसत्व के चरणों का स्पर्श करता रहे ।

स्थविर को नशे में ही क्रोध आगया, वह उठा और बोधिसत्व की तरफ़ पैर पसार कर लेट गया । इस पर बोधिसत्व मुस्करा पड़े और अपने शिष्यों से पूछा, "अंबतीर्थ में भयंकर विषसर्प का दमन करने वाला व्यक्ति कौन है ?"

शिष्यों ने उत्तर दिया, "सागत स्थविर !"

"क्या इस दशा में स्थविर एक जलसर्प को भी अपने वश में कर सकता है ?" बोधिसत्व ने पूछा ।

"नहीं, नहीं भगवन ! इस हालत में कदापि संभव नहीं है !" शिष्यों ने कहा ।

"तो तुम लोग इस अनुभव को कभी मत भूलना ! मदिरापान देह में नशा ही पैदा नहीं करता, बल्कि चित्तभ्रम भी पैदा कर देता है । इसलिए मैं यह नियम बना रहा हूं कि आज से कोई भी मदिरा का पान नहीं करेगा ।" बोधिसत्व ने गंभीर होकर कहा ।

मदिरा का नशा उतरते ही स्थविर उठा और बोधिसत्व के चरणों पर गिरकर पश्चात्ताप करने लगा । इस पर बोधिसत्व ने उसे उठाया और मदिरा के सेवन से होनेवाले दुष्परिणामों के बारे में बताया ।

उस दिन से बौद्ध धर्म में मदिरापान वर्जित बनगया ।
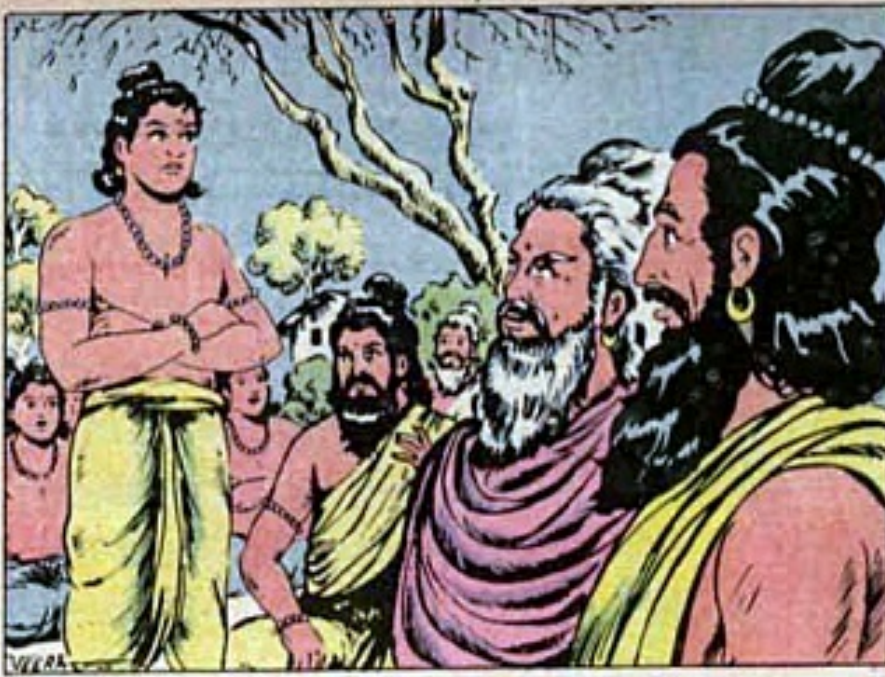
सरस्वती

गौतम के तीन पुत्र थे— एकत, दित और त्रित। सबसे छोटा पुत्र त्रित बचपन में ही अपने ज्ञान और आचरण के लिए विख्यात हो गया। तपोवन में निवास करनेवाले सभी मुनि उसकी बड़ी प्रशंसा किया करते थे।

कालान्तर में गौतम मुनि के तीनों पुत्र वयस्क हो गये। वे तीनों एक बार आश्रम से निकल कर सुदूर गावों में बसनेवाले अपने पिता के दूसरे शिष्यों से मिलने गये। गौतम के शिष्यों ने उन मुनिकुमारों का आदरपूर्वक स्वागत और समुचित सत्कार किया। इन तीनों में त्रित ने उन सभी को विशेष रूप से आकर्षित किया।

कुछ दिनों बाद तीनों मुनिकुमार आश्रम को लौटने लगे। उनके साथ सोना, गाय आदि क़ीमती उपहार भी थे। शुभ घड़ी में यज्ञ करने के विचार से वे उत्साहपूर्वक आगे बढ़े।

दोनों बड़े भाई त्रित से ईर्ष्या करते थे। बीच मार्ग में उन दोनों भाइयों ने गुप्त रूप से इस बात का षडयंत्र किया कि उन तीनों को जो उपहार मिले हैं, उनमें त्रित का हिस्सा उसे न मिले। त्रित यह बात नहीं जानता था। वह अपने विचारों में ही डूबा हुआ अन्यमनस्क-सा अपने बड़े भाइयों से आगे-आगे जा रहा था।

तभी एकत और दित की निगाह एक भेड़िये पर पड़ी। वह झाड़ियों के पीछे अपने शिकार की ताक में बैठा हुआ था। भेड़िया धीरे-धीरे त्रित के पास जाने लगा। त्रित का ध्यान इस तरफ़ नहीं था। उसके बड़े भाइयों ने भी त्रित को इस बात की कोई चेतावनी नहीं दी और अपने प्राण बचाने के लिए पास के पेड़ों पर चढ़ गये।
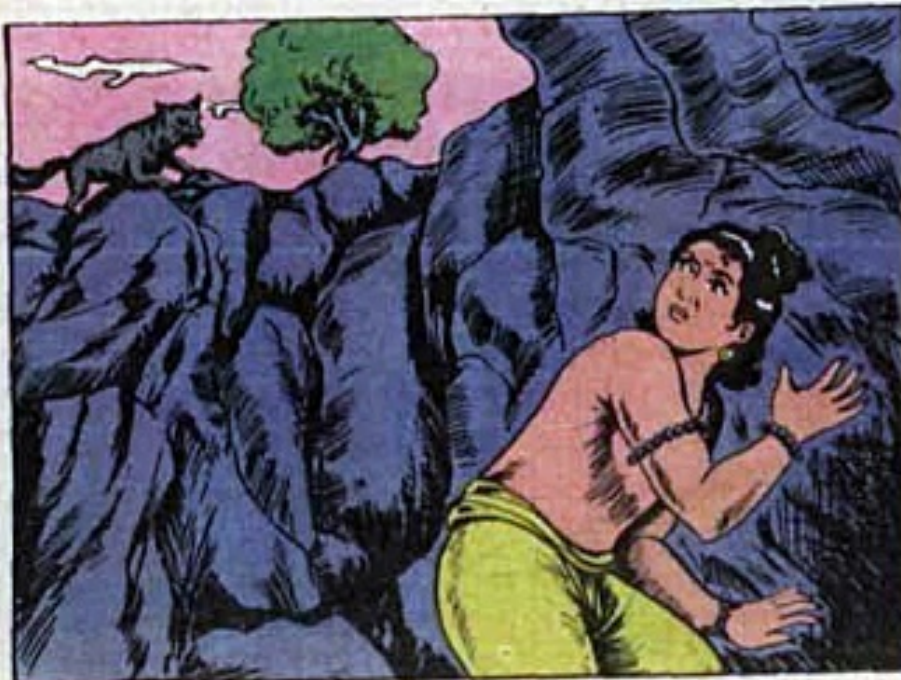
जैसे ही त्रित ने अपनी तरफ़ आते भेड़िये को देखा, उसने भागने की कोशिश की, लेकिन पैर फिसल जाने के कारण वह पास के गहरे गड्ढे में गिर पड़ा। भेड़िया थोड़ी देर गड्ढे के चारों तरफ चक्कर काटता रहा, फिर वहां से चला गया। त्रित ने अपनी रक्षा के लिए जोर से अपने भाइयों को पुकारा, पर कोई परिणाम न निकला।

भेड़िये के चले जाने के बाद एकत और दित धीरे से पेड़ों से उतर आये। उन्होंने गड्ढे के किनारे पड़ी त्रित की धन की थैली ले ली और गायों को हांक कर अपने रास्ते चले गये। लेकिन उन दोनों ने त्रित की पुकार पर जरा भी ध्यान नहीं दिया।

उधर यज्ञ की शुभ घड़ी निकट आ रही थी। त्रित अत्यन्त व्याकुल होने लगा। तभी उसके दिमाग में एक बात आयी और उसने गड्ढे के अन्दर ही यज्ञ करने का निश्चय कर लिया। पर कैसे ? उसने गड्ढे के अन्दर पड़े सूखे घास के तिनकों को अग्नि मानकर मंत्रोच्चार किया और गड्ढे के एक कोने में भरे जल को घृत मानकर आहुतियां देने लगा।

त्रित के बड़े भाई आश्रम पहुँचे और यज्ञ के लिए सारी आवश्यक सामग्री एकत्रित करके यज्ञ करने लगे। यज्ञ के लिए उनके मन में विशेष श्रद्धा और भक्ति नहीं थी, इसलिए वे मंत्रों का उच्चारण उतना शुद्ध नहीं कर पाये। परिणाम यह हुआ कि उन्हें यज्ञ का फल प्राप्त नहीं हुआ और उनके सारे प्रयत्न निष्फल होगये।

उधर गड्ढे में यज्ञ करनेवाले त्रित की श्रद्धा और भक्ति पर प्रसन्न होकर देवता उसके सामने प्रत्यक्ष हुए और वर मांगने को कहा। त्रित ने देवताओं से यही प्रार्थना की कि वह गड्ढे से बाहर निकल जाये और गड्ढे से निकल रहा यह जल देवताओं को समर्पित करने लायक़ पवित्र बन जाये।

देवताओं ने त्रित को दोनों वर प्रदान किये। जल का स्त्रोत बड़े वेग से उमड़ आया और उस प्रवाह ने त्रित को ऊपर उछाल दिया। अब वह जल नदी का रूप धरकर बहने लगा। देवताओं ने उन दोनों दुष्ट भाइयों को शाप दिया, जिससे वे सुअर सदृश जानवर बन गये।

वह नदी सरस्वती के रूप में विख्यात हुई। वैदिक युग के ऋषियों ने मुक्त कंठ से उस नदी का महिमा-गान किया। कालक्रम में यही सरस्वती नदी फिर भूगर्भ में पहुंच गयी। अन्तर्वाहिनी नदी के रूप में प्रवाहित होने वाली सरस्वती इलाहाबाद में प्रयाग के पास गंगा-यमुना के साथ त्रिवेणी-संगम बन गयी है।

दोष किसका ?

उस समय लक्षण देश पर मिहिरवर्मा का राज्य था। एक बार निर्मलानन्द नाम के ऋषि राजधानी में आये। कुछ ही दिन बीते थे कि सारा नगर उनकी महिमाओं का गुणगान करने लगा। उन्हें भगवान का अंश, और एक विभूति समझकर प्रजा उनकी पूजा करने लगी।

राजा मिहिरवर्मा ने भी निर्मलानन्द की ख्याति सुनी और उनके मन में ऋषि के दर्शन करने की इच्छा पैदा हुई। लेकिन राज्य के एक गुप्तचर ने राजा को यह सूचना दी कि निर्मलानन्द योगी जैसे प्रतीत नहीं होते। राजा ने योगी की गति विधियों पर कड़ी निगरानी रखने के आदेश दिये। कुछ दिनों में यह साबित हो गया कि वह एक कपट योगी है।

राजा ने निर्मलानन्द को शिष्यों सहित दरबार में बुला भेजा। राजा ने जैसे ही निर्मलानन्द के कपटाचारों का उल्लेख किया, वैसे ही योगी समझ गया कि उसके सारे काले कारनामों का पता राजा को लग गया है।

फिर भी निर्भलानन्द थोड़ा भी विचलित नहीं हुआ और साहस करके बोला, "महाराज ! आपने मेरे बारे में जो कुछ कहा, सब सच है। लेकिन इसमें मेरा दोष नहीं है, सच और झूठ का अन्तर जाने बिना विश्वास करने वाली प्रजा का दोष है। महान मेधावी और प्रज्ञाशाली पुरुष भी मेरे आश्रय में आते हैं। किसलिए ? अपनी कामनाओं की पूर्ति के लिए ही न ?"

"तो इससे लाभ उठाकर तुम सारी प्रजा को धोखा दे रहे हो ?" राजा मिहिरवर्मा ने क्रोधित होकर कहा।

"महाराज ! बताइये, इसमें मेरा क्या दोष है ? ये लोग अपनी कामनाओं की पूर्ति के लिए भगवान की प्रार्थना करने की अपेक्षा मेरे आश्रय में आना ज्यादा सरल समझ लेते हैं। इसलिए इसमें इन स्वार्थियों का ही दोष है। अगर ये लोग मुझे महात्मा न मानते, मुझे इतना आदर न

मनोहर पाठक
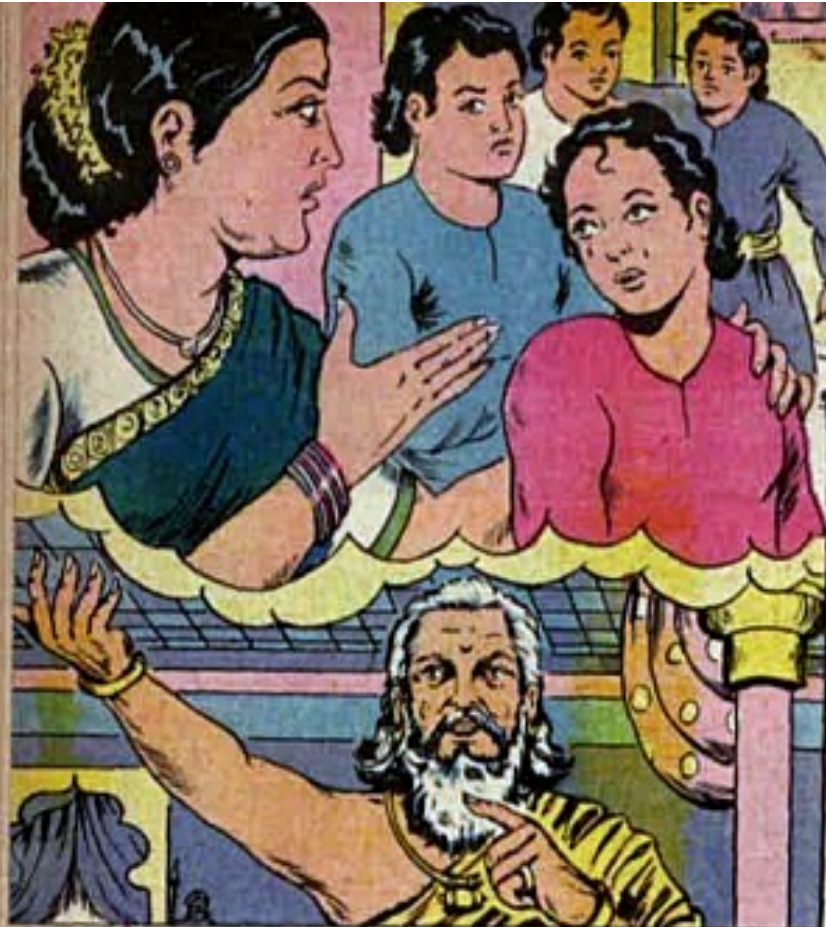
देते, तो मैंने इस प्रकार का व्यवहार न किया होता ।

साथ ही एक बात और भी है। प्रजा ने जो मेरा आदर-सत्कार किया है, तो इससे उसका कोई नुक़सान नहीं हुआ। ये लोग मुझे मुट्ठी भर चावल और थोड़े फल अर्पित कर देते हैं, तो इससे इनकी ज़मीन-जामदाद घट नहीं जाती !'' निर्मलानन्द ने कहा ।

राजा मिहिरवर्मा निर्मलानन्द का यह तर्क सुनकर विस्मय में आगये। उन्हें कोई जवाब नहीं सूझा। उन्होंने मंत्री की तरफ़ दृष्टि दौड़ायी। लेकिन मंत्री को भी तत्काल कोई उत्तर नहीं सूझा ।

राजा और मंत्री यह निर्णय नहीं कर पाये कि निर्मलानन्द के कथन में सत्यता है या नहीं। राजा और मंत्री को शंकित मनस्थिति में देखकर बगल में बैठे राजगुरु मंद-मंद मुस्कुराते हुए निर्मलानन्द से बोले, ''निर्मलानन्द ! तुम्हारा कथन मुझे एक कहानी का स्मरण दिला रहा है। तुम ध्यान पूर्वक वह कहानी सुन लो ! बहुत पहले कभी एक माता के चार पुत्र थे। उनमें एक पुत्र बहुत भोला था। उसके भोलेपन का लाभ उठाकर बाक़ी तीनों पुत्र उसे अक्सर सताया करते थे। माता उनसे पूछती तो वे यही जवाब देते थे कि अगर वह हमारी बात का विरोध करता तो क्या हम ऐसा कर सकते थे।

''माता को भी ऐसा लगा कि उनकी बातों में सच्चाई है। इसलिए उसने अपने भोले पुत्र को यह सलाह दी कि वह अपने बड़े भाइयों की बातों का विरोध किया करे और सदा सावधान रहे। थोड़े दिनों बाद माता की मृत्यु होगयी और वह नरक लोक में गयी ।

''नरकलोक में यमराज ने माता को दोषी ठहराकर समझाया, 'माई, पांचों उंगलियां बराबर नहीं होतीं। एक उंगली दूसरी उंगली के रूप में कभी बदल नहीं सकती। तुम्हारे भोले पुत्र को जब तुम्हारे दूसरे पुत्र सताते थे, तब तुमने उनकी बात का समर्थन किया, जब कि दोष तुम्हारे उन पुत्रों का था, भोले पुत्र का नहीं था ।''

राजगुरु ने आगे कहा, 'बल ही न्याय है'

यह कथन राक्षसत्व का बोध कराता है, न्याय का नहीं। किसी के भोलेपन का आसरा लेकर उसकी खिल्ली उड़ाने का प्रयत्न करना अपराध है। भोले लोग अपने प्रति होनेवले अत्याचारों के विरुद्ध विद्रोह नहीं कर पाते, इसे उनकी दुर्बलता कहा जा सकता है।

"इसलिए निर्मलानन्द ! मैं इस कहानी से तुम्हें सिर्फ़ यह बताना चाहता हूं कि सारी मानवजाति के बीच एक प्रकार के भ्रातृत्व का बन्धन है। बड़ी-बड़ी कामनाएं करना और उनकी पूर्ति के लिए लालायित होना, यह सचमुच ही उनकी दुर्बलता मानी जा सकती है। लेकिन उनकी दुर्बलता को आधार बनाकर तुम सुखपूर्वक जीने की कामना करते हो, इसलिए दोषी तुम हो !

"तुमने जो यह कहा कि तुम्हारे आश्रय में जाने से जनता का कोई नुक़सान नहीं है। तुम्हें भेंट-उपहार देने से प्रजा की कोई आर्थिक क्षति नहीं होती, तो यह बात इतनी ही नहीं है। उनकी आर्थिक क्षति भले ही न हो, पर उनकी दुर्बलताओं को भड़का कर तुम मानसिक तौर पर उनकी अपार क्षति कर रहे हो। इस स्थिति में अगर तुम्हें यहां दंड न दिया गया तो जैसे नरकलोक में माता पर दोष लगा, वैसे ही यहां देश पर शासन करनेवाले राजा पर दोष लग जायेगा।"

राजगुरु के वचन सुनकर निर्मलानन्द ने लज्जित होकर सिर झुका लिया। राजा मिहिरवर्मा बहुत खुश हुए और राजगुरु से निवेदन किया कि वे ही यह निर्णय करें कि निर्मलानन्द को उसके कपट आचरण पर क्या दंड दिया जाये।

इस पर राजगुरु बोले, "निर्मलानन्द और ये दोनों शिष्य शारीरिक दृष्टि से हृष्टपुष्ट हैं। पर आलस्य के दुर्गुण ने इन्हें इस तरह गलत रास्ते पर बढने के लिए प्रेरित किया है। इसलिए इन तीनों को राजोद्यान में माली के काम में नियुक्त करना उचित होगा।"

राजा ने अपने गुरु के आदेश का पालन किया।

मूर्ख का दान

रामापुर गांव के सभी निवासियों ने मिलकर अपने गांव में एक राम मंदिर बनवाना चाहा। इस काम के लिए सबने चन्दा इकट्ठा करने का निर्णय किया।

सब के सब इकट्ठा होकर गांव के मुखिया के पास पहुँचे और मंदिर बनवाने की अपनी इच्छा प्रकट की।

मुखिया बोला, "तुम लोग जानते ही हो, गांव के बाहर आम का जो बगीचा है, उसके बगलवाली ज़मीन मेरी है। उसकी क़ीमत कम से कम एक हज़ार रुपया होगी। तुम लोग मेरे नाम पर दान के एक हज़ार रुपये लिखकर एवज में वह ज़मीन ले लो।"

मुखिया की बात पर गांव वाले बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने सोचा कि उस ज़मीन पर ही राम मंदिर बनवाया जा सकता है। इसके बाद वे लोग घर-घर घूमकर चन्दा वसूल करने लगे।

ग्रामवासियों ने चन्दा वसूल कर लिया, पर वह सारा धन मंदिर के निर्माण में खर्च होने वाली राशि से पांच सौ रुपये कम पड़ता था। लोगों की समझ में न आया कि उसकी पूर्ति कैसे की जाये! वे लोग मुखिया से सलाह-मशविरा करने के लिए फिर उसके घर पहुँचे और उसे सारी वस्तु स्थिति समझा दी।

मुखिया सारी बातें सुनकर बोला, "अरे, इसमें कौनसी बड़ी बात है? मैंने मंदिर के लिए जो ज़मीन दी है, उसकी क़ीमत हज़ार के बदले पंद्रह सौ कर देता हूं। मेरे नाम चन्दे के पंद्रह सौ रुपये लिख लो, बस! बोलो, पांच सौ रुपये की कमी पूरी होगयी न!"

नाचनेवाली बकरी

नागपुर गाँव में मुकुन्द नाम का एक महाजन रहता था। वह बहुत धनवान था। वह जिन कर्जदारों को पैसा देता, उनसे बड़ी निर्दयतापूर्वक ब्याज और चक्रवृद्धि ब्याज वसूल किया करता था। इस लाचारी के कारण उसके यहां से कर्ज लेने वाले अधिकांश लोग भिखारी बन गये थे।

धीरे-धीरे महाजन मुकुन्द के हथकंडे में फंसकर गाँव के कई लोग कंगाल बन बैठे और मन ही मन उस को कोसने लगे। कुछ लोग खुले आम उसकी निन्दा करने लगे। औरतें तो दुखी होकर उस को शाप देने लगीं। धीरे-धीरे उस के प्रति सारे गांव वालों का द्वेष बढ़ता गया। मुकुन्द ने यह बात भांप ली और सोचा कि अब आगे ज्यादा दिन इस गांव में रहना हितकर नहीं है। वह पास के एक जमींदारी गाँव में चला गया और उसने वहां अपना महाजनी धंधा शुरू कर दिया।

मुकुन्द ने नागपुर छोड़ने से पहले एक काम किया था-जो लोग तब तक उसका कर्ज नहीं चुका सके थे, उनके घर की कुर्की कर उसने नीलाम की बोली लगवायी थी। अभी नीलाम का वह धन उसके कब्जे में नहीं आया था। उसकी वसूली के लिए उसने अपने बेटे भूपति को नागपुर भेजा।

भूपति के मन में इस बात का घमंड था कि वह बहुत बुद्धिमान और समझदार है। वह अक्सर अपने मित्रों और जान-पहचान के लोगों के सामने अपनी समझदारी की डींग मारा करता था। लेकिन उधर मुकुन्द अपने बेटे की बुद्धिमत्ता का बिलकुल विश्वास नहीं करता था।

भूपति नागपुर आया और वहां एक हफ्ता रहकर नीलाम का सारा धन वसूल किया। जब वह अपने गांव लौटने को हुआ तो उसे अपने पिता की तरफ से यह सूचना मिली कि नागपुर में सबसे अच्छी किस्म की बकरियां बेची जाती

मनोज दास

हैं, इसलिए धन की चिंता किये बिना अच्छी किस्म की खासी अच्छी रक़म देकर, जो सबसे उत्तम बकरी हो, खरीद लावे ।

भूपति मवेशी-हाट पहुंचा । आम तौर पर उन दिनों में एक बकरी का दाम पांच रुपया था। भूपति बकरियों के एक व्यापारी के पास पहुंचा और एक बकरी की तरफ़ इशारा करके उसने उसका दाम पूछा । व्यापारी ने उस बकरी की क़ीमत दस रुपये बतायी ।

"क्या यह सचमुच सबसे उनम नस्ल की बकरी है ?" भूपति ने उस व्यापारी से पूछा ।

व्यापारी ने उदासीन-सा चेहरा बनाकर भूपति की तरफ देखा और उसका चेहरा परख कर बोला, "मैं हाट में जितनी बकरियां लाया हूं, ये सब उत्तम किस्म की हैं । पर अगर तुम्हें इससे भी अच्छी बकरी चाहिए तो भीलों का नेता गजसिंह है, तुम उसके पास चले जाओ ।"

"गज सिंह क्या करता है और कहां रहता है ?" भूपति ने पूछा ।

हाट के पास वाले तालाब के किनारे उसने छोटा तम्बू गाड़ रखा है, और वहीं वह बकरियों का व्यापार करता है । उसे लोग मांत्रिक गजसिंह कहते हैं । उसकी भील वेशभूषा देखकर तुम उसे आसानी से पहचान लोगे !" व्यापारी बोला ।

भूपति भील की खोज में चल पड़ा और उसके डेरे के पास पहुंच कर उसने गजसिंह को अपने आने का कारण बताया ।

गजसिंह ने भूपति को एड़ी से चोटी तक परख कर देखा, तब उस से कहा, "मेरे पास खेलनेवाली एक बकरी है । यदि तुम उसे देखना चाहो तो तुम्हें बीस रुपये शुल्क देना होगा !"

भूपति के मन में खेलनेवाली बकरी को देखने का कौतुहल पैदा हुआ । उसने भील सरदार को बीस रुपये शुल्क चुकाकर बकरी को देखा ।

वह बकरी रस्से पर चल सकती थी । सीधे खम्भे पर चढ़ सकती थी । इस तरह उस बकरी ने नटों जैसे खेल खेलकर दिखाये ।

भूपति को बड़ा आश्चर्य हुआ । उसने भील सरदार से पूछा, "तुम यह बकरी कितने में बेचना चाहते हो ?"

"अगर मैं इसे बेचना ही चाहूंगा तो एक हज़ार से कम दाम में नहीं बेचूंगा ।" भील सरदार बोला ।

"मैंने तो कहीं नहीं सुना कि किसी बकरी का दाम एक हज़ार रुपये होता है !" भूपति ने अचरज में भर कर पूछा ।

"अरे भाई ! तुम एक हज़ार की बात सुनकर एक दम चौंक रहे हो, अगर मेरी गानेवाली बकरी का दाम सुनोगे, तब तो तुम बेहोश हो जाओगे ।" गजसिंह ने कहा ।

"गानेवाली बकरी ? इसका तो कोई यकीन ही नहीं करेगा । क्या तुम मुझ को देहाती समझकर बेवकूफ़ बनाना चाहते हो ।" भूपति ने विस्मय प्रकट किया ।

"मैं सच बोलता हूं । गानेवाली बकरी भी मेरे पास है । अगर तुम उसका गाना सुनना चाहते हो तो तुम्हें एक सौ रुपये शुल्क के देने होंगे, बोलो, तुम क्या उस का गाना सुनने को तैयार हो ?" भील ने कहा ।

भूपति गाने वाली बकरी की बात सुन कर अचरज में आ गया । उसके मन में बकरी का गाना सुनने का कौतूहल हुआ । वह अपने इस लोभ का संवरण न कर पाया, फिर क्या था, वह तुरन्त सौ रुपये चुकाने को तैयार होगया । भील सरदार तम्बू के भीतर गया और एक बकरी को लाकर उसे गाने का आदेश दिया ।

बकरी ने मनुष्य की तरह गाना गाया और मधुर कंठ से गाया । उसका गाना सुनकर भूपति के आश्चर्य की सीमा न रही ।

उसने भील सरदार से पूछा, "इस बकरी का

दाम क्या है ?''

''पांच हज़ार रुपये !'' भील सरदार झट से बोला ।

''पांच हज़ार रुपये ? यह तो बहुत ही ज़्यादा है ।'' भूपति ने कहा ।

''तो फिर क्या ? तुमने कहीं गानेवाली बकरी को देखा है ? एक बात और, मेरे पास जो एक नाचने और गानेवाली बकरी है, इसका दाम उस बकरी से कहीं ज़्यादा कम है !'' भील सरदार बोला ।

''क्या मैं उस बकरी को देख सकता हूं ?'' भूपति ने पूछा ।

''क्यों नहीं ? खुशी से देख सकते हो ! पर उसके लिए तुम्हें दो सौ रुपये देने होंगे ।'' भील सरदार ने कहा ।

भूपति ने नाचने और गाने वाली बकरी को देखने केलिए दो सौ रुपया शुल्क चुकाने को मान लिया । भील सरदार तम्बू के अन्दर जाकर एक और बकरी पकड़ लाया । उसका सारा शरीर रंग-बिरंगी पोशाकों से ढंका हुआ था । दो पैरों पर नाचकर बकरी ने मीठे स्वर में गाना गाया । भूपति ने अपने मन में सोचा, इससे बड़ा आश्चर्य तो और कुछ न होगा ।

''तुम इस बकरी को किस दाम पर बेचना चाहते हो ?'' भूपति ने पूछा ।

''दस हज़ार रुपये में । इससे कम दाम में हर्गिज़ नहीं बेचूंगा । चाहे तो दस हज़ार रुपये इस का दाम देकर खरीद ले जाओ, वरना अपने रास्ते से चलते बनो, समझें !'' भील सरदार बोला ।

''यह तो बहुत ज्यादा दाम है ।'' भूपति ने कहा ।

''ऐसी कोई बात नहीं ! सच मानो तुम दूसरों के सामने उसे नचा, गवाकर इससे दुगुनी रक़म वसूल कर सकते हो ।'' भील सरदार ने कहा ।

भूपति सोच में पड़ गया । उसके मन में यह शंका पैदा होगई कि उसके पिता को शायद ऐसी विचित्र बकरियों के बारे में पता लग गया है । इसीलिए अधिक दाम देकर बकरी खरीदने के लिए कहला भेजा होगा । अगर ऐसी बात न भी हो, तब भी वे इस अनोखी बकरी को देखकर

खुशी से फूले न समायेंगे। साथ ही, इसके नाच-गान से जनता से काफ़ी धन भी तो कमाया जा सकेगा।

खूब सोच-विचार के बाद भूपति ने भील सरदार के साथ मोलभाव किया और अन्त में आठ हज़ार रुपये में उस बकरी को ख़रीद लिया। अब उसके पास एक फूटी कौड़ी भी न बची। इसके बाद उसने एक किराये की गाड़ी तय करने की कोशिश की, लेकिन उसके साथ बकरी देख गाड़ीवान ने आधा किराया पेशगी देने का हठ किया।

भूपति की समझ में कुछ न आया कि क्या किया जाये! उसने गांव के किसी आसामी के पास से कर्ज लेने का विचार किया, पर यह भी कुछ ठीक न लगा। सारे गांववाले जानते थे कि उसके हाथ में काफ़ी पैसा है। भूपति गांववालों को यह रहस्य नहीं बताना चाहता था कि उसने अपना सारा पैसा देकर एक बकरी खरीद ली है।

आखिर लाचार होकर भूपति बकरी के गले की रस्सी खींचता पैदल ही चल पड़ा। भूखा-प्यासा, थका-हारा वह गांव पहुंचा और अपने पिता से बोला, "पिताजी! मैं एक ऐसी अद्भुत बकरी ख़रीद कर लाया हूं, जो संसार में कहीं ढूंढ़े न मिलेगी। इसे देख आप एक दम चकित हो जायेंगे।"

"अच्छा, ऐसी बात है!" कहकर मुकुन्द ने बकरी की तरफ़ एक निगाह डाली और बोला, "कल दावत पर मैंने जमींदार और दीवान साहब को निमंत्रण दिया है। इसके मांस का स्वाद चख़ने के बाद ही इसके अद्भुत होने का पता लगेगा।"

यह बात सुनते ही भूपति घबरा गया और अचकचाकर बोला, "क्या कहा? इसके मांस का स्वाद! वाह, यह भी खूब है। इसे मैं खाने के लिए नहीं लाया हूं। हम इसके जरिये लाखों रुपये कमायेंगे। कल सारे मेहमानों को यहाँ पर आने दो। वे इस अद्भुत दृश्य को देख सकेंगे। फिर यह ख़बर राजा के कानों तक पहुंचेगी, वे हमसे यह बकरी ख़रीदने के लिए अपने खज़ाने का आधा धन भी खर्च करने के लिए तैयार हो जायेंगे।"

अपने बेटे के मुंह से ऐसी उत्साहपूर्ण बातें

सुनकर मुकुन्द ने सोचा कि इस बकरी के अन्दर ज़रूर कोई ख़ासियत है ।

फिर क्या था, उसने दावत के लिए गांव से एक और बकरी मंगवा ली ।

दूसरे दिन वक्त पर जमींदार, दीवान तथा नगर के कुछ और प्रमुख व्यक्ति दावत पर आये । मुकुन्द ने उन्हें बताया कि दावत के पहले मनोरंजन का एक अद्भुत कार्यक्रम पेश किया जायेगा । भूपति उन सब मेहमानों के सामने नाचने-गाने वाली उसी बकरी को लाया और उसे आदेश दिया, "अब तुम अपना नाच और गाना शुरू करो ।"

एक-दो मिनट बीत गये, फिर पंद्रह मिनट बीत गये । आधा घंटा बीत गया इस बीच भूपति ने बकरी को नाचने-गाने का आदेश देते हुए तीन-चार बार जोर से तालियां बजायीं, पर बकरी गाना-नाचना तो दूर, हिली-डुली भी नहीं

मुकुन्द ने अपमान और क्रोध के भार से अपना सिर झुका लिया । मेहमान खिलखिला-कर हँस पड़े ।

जमींदार के दीवान ने भूपति से पूछा, "सुनो भाई ! कहीं तुम उस भील मांत्रिक गजसिंह के हाथों तो धोखा नहीं खा गये ?"

"जी हां । उसी भील सरदार से मैंने यह बकरी ख़रीदी है ।" कांपते स्वर में भूपति ने जवाब दिया ।

"उसने तुम्हें खूब चकमा दिया । वह अपने मंत्रों के बल पर बकरियों को नाचने व गाने लायक़ बना देता है । पर जब वे बकरियां उसके यहां से निकल कर दूसरी जगह पहुंच जाती हैं तो साधारण बकरियां बन जाती हैं ।" दीवान ने सारी बात साफ़ कर दी ।

धोखा खाने की खबर सुनकर भूपति के साथ मुकुन्द को भी लगा कि वे पागल होते जा रहे हैं । इस धक्के के बाद यह कहना मुश्किल था कि वे अपनी पहली स्थिति में आगये या नहीं ! लेकिन मेहमानों के बीच कुछ लोग कानाफूसी कर रहे थे, "दूसरों के घर-बार लूट कर मुकुन्द ने जो धन जोड़ा था, वह भील मांत्रिक के पल्ले पड़ गया ।"

उलटा परिणाम

बहुत पहले मिथिला देश पर एक मंदभाग्य नाम के राजा राज्य करते थे। वे अव्वल दर्जे के क्रोधी, अहंकारी और भले-बुरे का विचार किये बिना काम करने वाले व्यक्ति थे। जो मन में आता, उसे उसी क्षण राजा के आदेश के रूप में अमल में लाते थे।

एक दिन राजा मंदभाग्य राजमहल की छत पर ठंडी हवा में टहल रहे थे। उन्होंने देखा, राजपथ पर लोगों की अपार भीड़ चल रही है। उनकी दृष्टि इस बात पर भी पड़ी कि वे लोग तरह-तरह की रंगबिरंगी 'पोशाकें' पहने हुए हैं। राजा के मन में झट से एक बात आयी। राजा ने मंत्री को बुलवा भेजा।

"मंत्रिवर !" राजा ने कहा।

"क्या आदेश है, महाराज !" मंत्री ने पूछा।

"राजपथ की ओर निगाह डालिये। मुझे ऐसा लगता है कि लोग मनमाने ढंग से चल रहे हैं। यह बात मैं सहन नहीं कर सकता। मैं चाहता हूं कि पोशाकों से लेकर जनता के सारे आचरण एक ही प्रकार के हों। यहां तक कि उनका भोजन, भाषा, आराध्यदेव—सब समान और एक हो। आप तुरन्त सारे राज्य में इस बात का ढिंढोरा पिटवा दें। यह हमारा आदेश है।" राजा ने कहा।

मंत्री ने नम्रतापूर्वक राजा को समझाया कि वेशभूषा, भाषा व बोली, खानपान, इन सारी बातों में जनता को खिलौनों की तरह एक ही सांचे में ढालना न तो उचित है और न संभव ही है। पर राजा ने एक न सुनी और साफ़ कह दिया कि उनके आदेश का पालन होना ही चाहिए।

दो-चार दिन बीत गये। राजा मन्दभाग्य के मन में यह बात जानने की इच्छा पैदा हुई कि मंत्री ने उनके आदेश का ढिंढोरा ठीक से पिटवा दिया है या नहीं। उनके मन में इस बात का पक्का विश्वास जम गया कि उनके शासन में प्रत्येक व्यक्ति आहार-विहार, खान-पान, रीति-

२४ वर्ष पहले 'चन्दामामा' में प्रकाशित एक कहानी

रिवाज़ से लेकर हर चीज़ में एक रीति और एक संप्रदाय का पालन करे तो यह एक अद्भुत बात होगी और सारे संसार में वे अपने शासन के लिए एक शाश्वत और विशिष्ट स्थान बना लेंगे।

एक दिन सुबह के वक्त राजा मन्दभाग्य टहलने के लिए अपने उद्यान की तरफ़ गये। वहां उन्होंने जो दृश्य देखा, उससे उनका मन विकल हो उठा। सभी दास-दासियां एक ही प्रकार की पोशाकें धारण किये हुए थे। राजा के लिए यह जानना असंभव-सा हो गया कि इनमें कौन पुरुष है और कौन नारी !

इसके बाद राजा रनिवास में गये। वहां भी यही दशा थी। उन्हें यह पहचानना कठिन होगया कि कौन रानी है, औ कौन दासी है ! सब एक ही तरह की पोशाक और आभूषण पहने हुए थीं।

यह सब देखकर राजां मंदभाग्य को लगा कि उनका मतिभ्रम हो रहा है। उन्हें मंत्री पर बड़ा क्रोध आया। वे सीधे राजदरबार में पहुँचे। वहां भी यही हालत थी। उन्हें पहचानना मुश्किल होगया कि मंत्री कौन है ? सेनापति कौन है और सेवक कौन है ? सब एक ही प्रकार के वस्त्र धारण किये हुए थे।

"मंत्री !" राजा ने गरज कर कहा।

"मंत्री !" इसके उत्तर में मंत्री भी उसी तर्ज में गरज उठा।

"अरे दुष्ट ! क्या मैं मंत्री हूं ?" राजा ने दुतकारा। मंत्री ने भी उन्हीं बातों को तोते की तरह रट कर दुहरा दिया।

राजा को यह बात समझने में देरी न लगी। उन्होंने अनुभव किया कि इन सारे दुष्परिणामों का कारण उन्हीं का गलत निर्णय है।

इस पर राजा मंदभाग्य अपनी मूर्खता पर लज्जित होगये। वे चुपचाप अपने महल को लौट गये। दूसरे दिन सारे राज्य में यह ढिंढोरा पिटवा दिया गया कि हर व्यक्ति अपनी इच्छा के अनुरूप वस्त्र धारण कर सकता है, अपनी भाषा बोल सकता है, अपने देवता की आराधना कर सकता है और अपनी इच्छा से अपने रीति-रिवाज़ों का पालन कर सकता है।

शिव पुराण

मेनका और हिमवान अपने प्रसाद में लौटकर सुखपूर्वक दिन बिताने लगे। कालक्रम में मेनका ने गर्भ धारण किया और जब पांच ग्रह उच्च दशा में विद्यमान थे तो उसने एक पुत्र को जन्म दिया। यह पुत्र मैनाक नाम से प्रसिद्ध हुआ। इसके बाद उनके निन्यानबे पुत्र और हुए। सौ पुत्रों के जन्म के बाद कुछ काल निकला। मेनका ने पुनः गर्भधारण किया और नौ माह पंद्रह दिन बाद आरुद्रा नक्षत्र में चैत्र शुक्ला नवमी के दिन एक कन्या को जन्म दिया। देवप्रिया इस कन्या का नाम पार्वती रखा गया। पार्वती के जन्म के समय सारी दिशाओं में प्रकाश फैल गया। देवताओं ने पुष्पवर्षा की। ब्रह्मा, विष्णु, इंद्र आदि ने महाशक्ति का स्तोत्रगान किया।

इस कन्या के बदन की कान्ति नीलवर्ण की थी, उसके चार हाथ थे, ललाट पर नेत्र था। वह काली देवी की आकृति को धारण कर रही थी। अपनी कन्या का यह असाधारण रूप देख मेनका ने उससे प्रार्थना की कि वह सामान्य शिशु का रूप धारण करे। देवी ने उसकी प्रार्थना स्वीकार की और वह अत्यन्त सुन्दर बालिका का रूप धर रोने लगी।

पुत्री के जन्म का वृत्तान्त सुनकर हिमवान आनन्द से भर उठे। उन्होंने पुरोहितों और ब्रह्मणों को साथ लिया और प्रसूति-गृह में पहुँचे। कर्पूर के दीप जलाये गये, कस्तूरी जल छिड़का गया, ब्राह्मणों ने आशीर्वचन कहे और सबको धन, धान्य, आभूषण तथा रेशमी वस्त्रों का दान दिया गया। अन्तःपुर की स्त्रियों ने नृत्य

गान किया ।

दिन सुखपूर्वक बीत रहे थे । पार्वती धीरे-धीरे बढ़ने लगी । वह अपनी सखियों के साथ घूमती, मत्त सिंहों पर सवार होकर पहाड़ों का भ्रमण करती, बर्फ़ीले टीलों तथा गुफाओं में आंख मिचौनी खेलती । वह अपने को माता और अपनी सखी-सहेलियों को बच्चा मानकर उनमें फल-फूल बांट देती । गेंद से खेलते समय उसे अपनी सखियों को दिखाकर कहती, "यह तो ब्रह्माण्ड है, मैं इसे यों नचाती हूं ।"

खिलौनों से खेलते समय उन्हें ब्रह्म, विष्णु, महेश्वर का नाम देती और कहती, "देखो, ये मेरे हाथ में कैसे नाच रहे हैं ।" जब वह घरौंदे बनाती तो कहती, "मैं ब्रह्मा हूं" जब उनकी संभाल करती तो कहती "मैं विष्णु हूं" और जब उन्हें गिरा देती तो बड़े गर्व से अपने को 'महेश्वर' कहती । पार्वती के मुँह से निकलने वाले इन शब्दों का अर्थ उनकी सखियों की समझ में न आता । वे सिर्फ़ उन्हें पार्वती की बाल-लीलाएँ समझ कर चुप रह जातीं ।

इस प्रकार पार्वती ने अपनी बाल-लीलाएं कीं । विद्याभ्यास करके उसने सारी विद्याएं सीख लीं । वह सदा-सर्वदा परमेश्वर का ध्यान करती और सामस्तोत्रों का गान कर सदा प्रसन्न रहती । ऐसे समय जब सखियां उसे 'पार्वती' कह कर पुकारतीं, तो वह उनका उत्तर नहीं देती थी, लेकिन जब वे उसे 'शिवानी' कहकर बुलातीं, तो तत्काल जवाब देती थी । वह सदा सिंह की सवारी करती । उस समय उसके हाथों में धनुष-बाण और त्रिशूल दिखाई देते । वह कभी दूसरे वाहन की सवारी नहीं करती थी और न ही साधारण कोटि के अस्त्र धारण करती थी । कभी-कभी वह वीणावादन करती और स्वयं झूम उठती । कभी विद्याधरों से बढ़कर गान करती । स्वर्ग की अप्सराओं से सुन्दर नाचती और कभी चित्रफलक पर शिव का रूप अंकित कर अपनी सखियों को दिखाती ।

उन्हीं दिनों एक बार नारदमुनि हिमवान को देखने आये । हिमवान ने आगे बढ़कर आदर पूर्वक उनका स्वागत किया । उन्हें सादर उचित आसन पर बिठाकर हिमवान ने पार्वती को बुला भेजा । पिता का संकेत पा कर पार्वती ने देवर्षि

को प्रणाम किया। हिमवान ने पुत्री को गोद में बिठाकर नारद से पूछा, "महामुनि ! आप तो सर्वज्ञ हैं, कृपया बताइये इस कन्या का पति कौन होगा ?"

नारद ने पार्वती के हाथ में गज, मत्स्य, अंकुश तथा रथ की रेखाएं देखकर कहा, "हिमवान ! आपकी पुत्री की हथेली में महाशक्ति के लक्षण हैं। इस कन्या से आपका यश बढ़ेगा। लक्ष्मी-सरस्वती के समान इसकी सर्वत्र पूजा होगी। इसके योग्य पति एक मात्र शिव हैं, इसलिए किसी प्रकार की चिंता किये बिना इसका विवाह शिव से कर दीजिए।"

नारद के चले जाने के बाद हिमवान मेनका से बोले, "हमने परदेवी उन महाशक्ति से प्रार्थना की थी कि वे हमारी पुत्री के रूप में जन्म लें और शिव से विवाह करें। आज हमारे विश्वास के अनुरूप महर्षि नारद ने भी ऐसे ही शुभ वचन कहे।"

मेनका प्रसन्न होकर बोली, "हमारी पार्वती इस वक्त विवाह के योग्य हो चुकी है। इसलिए अब आप विलम्ब न करें और शीघ्र विवाह का प्रयत्न करें।"

...उधर शिव सती के प्राण-त्याग के बाद उनके शरीर को कंधे पर डालकर सारे विश्व का भ्रमण करने लगे।

उन्होंने गंगासागर के संगम के पास कालीघाट पर ताण्डव नृत्य किया। तब विष्णु ने अपनी माया से सती की काली रूप में वहां स्थापना की और शिव को ज्ञान का उपदेश करवाया। शिव में घोर वैराग्य आगया और वे वीरासन लगा कठिन तपस्या में लीन होगये। पर शिव भक्तवत्सल थे। तपस्या से उन्हें कोई भी भक्त प्राप्त कर सकता था। हिमवान ने सोचा, पार्वती भी शिव के लिए तपस्या करे। उन्होंने यह बात पार्वती से कही।

पार्वती इस विचार से फूली न समायी और पति रूप में शिव की प्राप्ति के लिए तपस्या करने को उद्यत हो गयी।

इस सारे निश्चय के बाद मेनका और हिमवान पार्वती को लेकर शिव की तपोभूमि कैलास में पहुंच गये। शिव तपोलीन थे। उनके चारों तरफ गणाधिपति आयुध धारण करके

खड़े हुए थे। कुछ लोग शिव की परिचर्या में लगे हुए थे। हिमवान को शिव के निकट जाने के लिए रुद्रगणों ने अनुमति दे दी।

हिमवान ने पत्नी मेनका के साथ शिव को साष्टांग दण्डवत् प्रणाम किया और उन्हें भक्ति पूर्वक फूल-चन्दन अर्पित कर हाथ जोड़कर खड़े होगये।

शिव ने अपने नेत्र खोले और हिमवान को देखकर कहा, "हिमवान ! तुम अत्यन्त पवित्र हो, इसलिए मैं तुम्हारी भूमि इस कैलास पर तपस्या कर रहा हूं।"

"महात्मा ! आप यहां तपस्या करते हैं, यह मेरे लिए सौभाग्य की बात है। यहां आपके तप में किसी प्रकार का विघ्न न हो, इस बात का मैं सदा ध्यान रखता हूं।" हिमवान ने विनयपूर्वक कहा।

शिव प्रसन्न होकर बोले, "हिमवान ! तुम्हारी भक्ति पर मैं प्रसन्न हूँ तुम कोई वर मांगो !"

"प्रभु ! मेरी पुत्री पार्वती आपकी सेवा करने के लिए आग्रह प्रकट करती है। इसलिए मैं इसको अपने साथ लेकर आप की सेवा में उपस्थित हुआ हूँ। मेरा पूरा विश्वास है कि आप मेरी प्रार्थना को नहीं ठुकरायेंगे। कृपया उसे आप अनुमति प्रदान करने का अनुग्रह करें।" हिमवान ने करबद्ध प्रार्थना की।

"स्त्रियां तपस्वियों की परिचर्या करें, यह उचित नहीं है। यदि तुम चाहो तो तुम आकर, परिचर्या करके जाते रहो।" शिव ने कहा।

"महात्मा ! मेरी पुत्री कन्या है। परदेवी महाशक्ति के वरदान से उसका जन्म हुआ है। आप जैसे वैरागी तपस्वी का उसके द्वारा तपोभंग नहीं होगा। आप मेरी प्रार्थना स्वीकार करें और मेरी पुत्री की सेवा स्वीकार करने की कृपा करें।" हिमवान ने शिव से निवेदन किया।

शिव ने हिमवान की प्रार्थना स्वीकार कर ली।

सतीदेवी के देह-त्याग के बाद शिव कैलास में एक बार तपोलीन थे। तभी उनके ललाट से तपस्या की उष्णता के कारण पसीने की एक बूंद पृथ्वी पर गिर पड़ी। उस बूंद में से एक पुत्र उत्पन्न हुआ। वह आजानुबाहु था। वह गोरे रंग

की देह और स्थूल शरीर वाला था। भूदेवी ने उस पुत्र को गोद में उठाकर शिव के पास लाकर दिखाया ।

शिव ने भूदेवी को देखकर कहा, "तुम धन्य हो ! मेरे पसीने की बूंद से जन्मा यह बालक भौम नाम से प्रसिद्ध होगा और तुम्हारे लिए यश का कारण बनेगा ।"

भौम बड़ा हुआ । घोर तपश्चर्या करने के विचार से वह काशी पहुंचा। उसकी तपस्या से प्रसन्न होकर विश्वेश्वर ने भौम को ग्रहमण्डल में स्थान दिया। इसी भौम के कुज एवं अंगारक नाम पड़े ।

शिव जिस काल में तपस्या में लीन रहते थे, उसी काल में गंगा पृथ्वी पर अवतरित हुई । ऋषियों तथा पितृदेवताओं ने ब्रह्मा से प्रार्थना की थी कि पृथ्वी पर जल का सदा अभाव रहता है। ब्रह्मा ने प्रार्थना सुनी और अपने कमण्डलु से एक बूंद जल गिरा दिया। वह बूंद एक महान प्रवाह बनकर पृथ्वी की ओर बढ़ने लगी। शिव ने उस भीषण प्रवाह को देखा और पृथ्वी पर जल प्लावन के ख़तरे की आशंका करने लगे। उन्होंने उस प्रवाह को अपनी जटाओं में झेल लिया और एक बूंद को मान सरोवर में छोड़ दिया। शिव की तपस्या पुनः प्रारम्भ हो गयी।

इधर इस बीच कश्यप ऋषि की दूसरी पत्नी दिति ने, जो दक्ष की ही एक पुत्री थी, हिरण्यकशिपु और हिरण्याक्ष जैसे अत्यन्त शक्तिशाली, क्रूर एवं अत्याचारी दैत्यों को जन्म दिया। वे सारे संसार को सन्तप्त करने लगे। जगत को उनके अत्याचारों से मुक्त करने के लिए विष्णु ने वराह, नृसिंह आदि अवतार लेकर उनका संहार किया। दिति पुत्र-शोक से व्याकुल हो गयी। उसने कश्यप के अनुग्रह से पुनः गर्भधारण किया । दिति को गर्भवती देखकर इंद्र यह सोचकर भयभीत हो गये कि उनका एक और प्रबल शत्रु जन्म लेनेवाला है। इंद्र ने अपने वज्रायुध का प्रयोग किया और दिति के गर्भस्थ पिंड के टुकड़े-टुकड़े कर दिये। लेकिन कश्यप मुनि के प्रताप से पिंड के टुकड़े मृत्यु को प्राप्त न हुए और वे मरुतगण के रूप में जन्म लेकर इंद्र की सेवा-शुश्रूषा करने चले गये ।

दिति को पुनः निराशा मिली और उसने फिर अपने पति से प्रार्थना की कि उसे पुत्रदान करें। कश्यप ने दिति से कहा कि वह कुछ काल तक ब्रह्मा को लक्ष्य कर तपस्या करे। दिति ने कश्यप के आदेश का पालन किया और ब्रह्मा के अनुग्रह से वज्रकायवाले एक पुत्र को जन्म दिया। उस शिशु की वज्रकाया देखकर माता-पिता ने उसका नाम वज्रांग रख दिया।

वज्रांग के जन्म के समय सारे जगत में उल्कापात, भूकम्प, तूफान आदि उत्पात पैदा हुए। इन अशकुनों को देख देवता भयभीत हो गये। दिति ने वज्रांग को अत्यन्त लाड़-प्यार से पाल पोसकर बड़ा किया और कहा, "बेटा! देवताओं ने मुझे बहुत दुख दिया है। उन्होंने तुम्हारे बड़े भाई हिरण्यकशिपु तथा हिरण्याक्ष का वध किया। मरुत जब मेरे गर्भ में थे तो इंद्र ने मेरे गर्भ को काट डाला। तुम देवताओं के साथ युद्ध करना और इसका प्रतिकार करना।"

अपनी माता का आदेश पाकर वज्रांग ने दैत्य सेना का संगठन किया। रणभेरी बजायी और इंद्र के नगर को घेर लिया। वज्रांग और उसके शूरों ने देवताओं को खूब सताया, इंद्र को बन्दी बनाया और स्वर्ग पर अपना अधिकार कर लिया। ये सब समाचार पाकर दिति को परम आनन्द मिला।

अब भागे हुए देवता ब्रह्मा के पास पहुंचे और अपनी पराजय का समाचार सुनाया। ब्रह्मा ने देवताओं की सारी बातें सहानुभूति के साथ सुनीं; फिर कश्यप को साथ लेकर वज्रांग के पास पहुंचे। उन्होंने वज्रांग को समझाया और उससे अनुरोध किया कि इंद्र को मुक्त करके देवताओं को स्वर्ग का राज्य वापस लौटा दे।

इसके उत्तर में वज्रांग ने कहा, "मैंने राज्य और धन-सम्पत्ति के लालच में पड़कर देवताओं के साथ युद्ध नहीं किया। इंद्र बड़ा ही दुष्ट और अत्याचारी है। इसने मेरी माता को दुख दिया है। उनके गर्भ को काटा है। वैसे यह मुक्त करने योग्य नहीं है, फिर भी आपके अनुरोध की रक्षा के लिए इसे मुक्त कर रहा हूं। अगर इसने मेरी माता के हृदय को क्लेश न पहुंचाया होता तो मै भी इसे दुख न देता।"

वज्रांग की नम्रता देखकर और उसके मुख
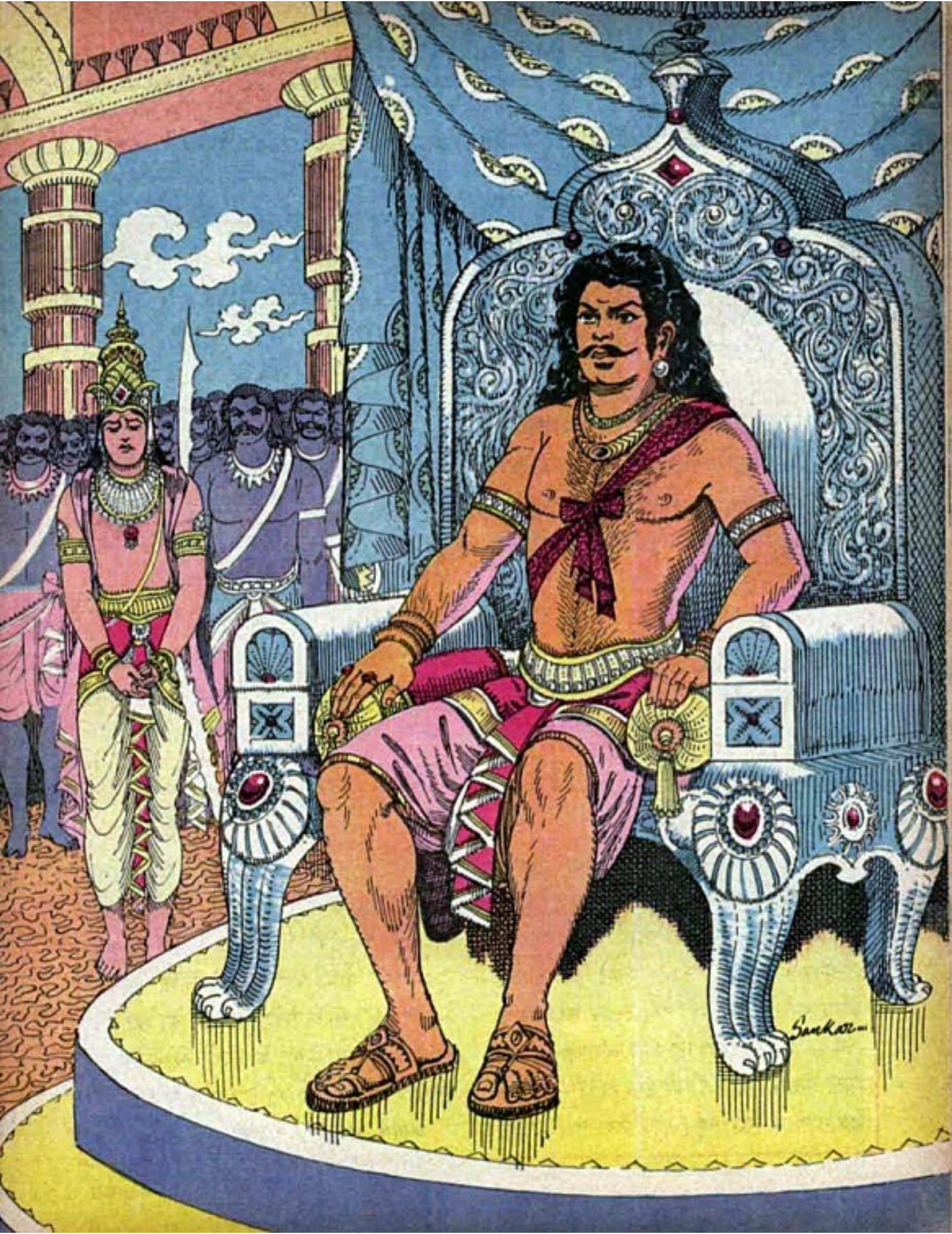
से इंद्र के मुक्त होने का समाचार सुनकर ब्रह्मा अत्यन्त प्रसन्न हुए। उन्होंने वज्रांग से वर मांगने को कहा।

"मैं केवल परब्रह्म का स्वरूप चाहता हूं और प्राणी मात्र पर दया चाहता हूं। बस ये ही मेरी दो इच्छाएं हैं। आप मुझे ये दोनों वर दीजिए!" वज्रांग ने ब्रह्मा से निवेदन किया।

वज्रांग के वचनों से ब्रह्मा और भी आनन्दित हुए और उन्होंने वज्रांग को वरांगी नाम की एक रूपवती कुमारी को पत्नी रूप में प्रदान किया। वज्रांग और वरांगी का विवाह सम्पन्न कर ब्रह्मा कश्यप आदि के साथ वहां से चले गये। इसके बाद वज्रांग शिवभक्त बनकर, सात्विक भाव रखते हुए अपने नगर को लौट आया और ईश्वर की आराधना में अपना शेष जीवन बिताने लगा।

कुछ दिन बीत गये। वज्रांग की पत्नी वरांगी साध्वी स्त्री थी। उसकी सेवा और प्रेम भावना से वज्रांग अत्यन्त प्रसन्न हुआ। उसने एक दिन अपनी पत्नी से कहा, "तुम्हारी जो इच्छा हो, वर मांगो, अवश्य दूंगा!"

वरांगी ने कहा, "अगर आप मुझ पर प्रसन्न हैं तो मुझे एक अत्यन्त शक्तिशाली, पराक्रमी तथा इंद्रादि देवताओं को पराजित करने वाला पुत्र प्रदान कीजिए!"

पत्नी के मुंह से यह बात सुनकर वज्रांग मन ही मन व्याकुल हो गया। वरांगी ने स्त्रीसुलभ चंचलता और अज्ञता के वशीभूत होकर देवताओं के शत्रुपुत्र की कामना की है। ऐसे पुत्र को विष्णु अधिक समय तक जीवित नहीं रहने देंगे। ये ही सारी बातें सोच कर वह चिन्ता में पड़ गया। उस की दुविधा का प्रबल कारण यह था कि उस की परम प्यारी पत्नी वरागी पुत्र की कामना करती है, पर वह पुत्र अधिक समय तक जीवित नहीं रहेगा। इस बात को वह नहीं जानती। यह बात मालूम होने पर उस पर क्या बीतेगा। फिर भी वह वचन-भंग नहीं कर सकता था। निदान के लिए उसने ब्रह्मा को लक्ष्य कर दीर्घकाल तक घोर तपस्या की।

गुलाम का रहस्य

एक बार लगातार दो बरस तक बारिश न हुई। बस्तर नगर और उसके आस पास के इलाकों के लोगों को पानी का भारी अभाव झेलना पड़ा। जब तीसरे बरस भी वक्त पर बारिश न हुई तो उनकी मुसीबत का कोई पार न रहा। बरसात का मौसम ख़त्म होने जा रहा था, लेकिन पानी की एक बूंद न गिरी।

जनता इस आशा और भरोसे से जैसे-तैसे अपनी ज़िन्दगी बिता रही थी कि कम से कम इस वर्ष अच्छी बारिश होगी और उनके दुख-दर्द दूर हो जायेंगे। फिर से उनकी ज़िन्दगी में खुशहाली छा जाएगी। पर अब उनकी सारी आशाओं पर पानी फिर गया और उनके सारे सपने धूल में मिल गये। अब उनके सामने सिवाय भगवान की शरण में जाने से कोई उपाय बच न रहा।

इस आपदकाल में कुछ भक्त एक रात मस्जिद पहुँचे और सिर उठाकर आसमान की तरफ़ ताकते हुए प्रार्थना करने लगे— "ऐ खुदा! हम पर रहम कर। अकाल पड़ने से हमारी फ़सलें नष्ट हो गयीं और पीने का पानी न मिलने से हम तड़प रहे हैं। पानी बरसा! हम पर मेहरबान हो!"

इस तरह भक्तों ने आधी रात तक प्रार्थना की। पर आसमान में बादल का एक टुकड़ा भी दिखाई नहीं दिया। आखिर सब मायूस होकर, थक कर वहीं सो गये।

उन भक्तों में एक आदमी ऐसा भी था, जिसे नींद नहीं आयी। उसने देखा, श्याम वर्ण का एक युवक पास के टीले पर चढ़ रहा है। उस भक्त को बड़ा आश्चर्य हुआ। वह कुतूहल भरी दृष्टि से उसे देखता रहा कि आखिर यह युवक क्या करने जा रहा है।

उस युवक ने टीले पर जाकर अपने घुटने टेक दिये। कुछ देर वह मौन बैठा रहा, फिर आसमान की तरफ़ सिर उठाकर बोला, "ऐ

'अरब की रातों' से एक कहानी

खुदा ! मुसीबत में फँसे इन भक्तों की बिनती सुन। मैं जानता हूं, तू मुझसे मुहब्बत करता है। मैं तुझसे दुआ मांगता हूँ, तू जल्दी पानी बरसा और इनकी प्यास मिटा ।"

युवक ने प्रार्थना समाप्त की और टीले से उतर आया। वह जाने को ही था कि उस भक्त ने उसके नज़दीक जाकर पूछा, "तुम कौन हो ?"

"मैं एक गुलाम हूं ! मस्जिद के पीछे के मकान में रहने वाले गुलामों में से ही मैं एक गुलाम हूं। गुलामों का व्यापारी हमारा मालिक हम सबको बेचने जा रहा है !" युवक ने जवाब दिया ।

युवक के मुँह से ऐसी बातें सुनकर भक्त नाराज़ होकर बोला, "तुम्हें तो बड़ा घमण्ड है ! तुम्हें कैसे मालूम कि खुदा तुम्हें मुहब्बत करता है ! जब खुदा बड़े-बड़े भक्तों की बिनती पर तवज्जह नहीं दे रहे हैं, ऐसी हालत में तू अपने मुँह से कैसे ये शब्द निकलता है कि खुदा तुझ से प्यार करता है। खुदा का प्यार पाने के लिए हमारे भक्त कई बरसों से बराबर उनकी दुआ मांगते आ रहे हैं। फिर भी हमारी प्रार्थना सफल न हुई। ऐसी हालता में तू एक गुलाम होकर भी खुदा से हमारी बिनती सुनने की सिफ़ारिश करता है !"

सवाल सुनकर वह गुलाम युवक क्षण भर चुप रहा, फिर बोला, "अगर मुझे खुदा मुहब्बत न करता तो मुझे कैसे पता लगता कि खुदा है। खुदा अत्यन्त रहमदिल है, यह दृढ़विश्वास मेरे दिल में कैसे घर करता ?" यह कहकर उसने चार-पाँच क़दम आगे बढ़ाये, फिर सिर उठाकर उस भक्त की तरफ देखे बिना बोला, "भाईजान। आसमान की तरफ़ निगाह डालकर देखो। तुम्हें खुद पता लग जायेगा कि खुदा मुझे मुहब्बत करता है या नहीं ?" वह गुलाम युवक आगे बढ़ गया ।

भक्त ने आसमान की तरफ सिर उठाकर देखा। अभी तक आसमान एकदम साफ़ था, पर अब उसमें काले बादल घिर-घिर कर आरहे थे । वह सिर झुकाता, इससे पहले ही मूसलाधार वर्षा आरम्भ होगयी ।

भक्त ने गुलाम युवक की खोज की, मगर

वह कहीं दिखाई नहीं दिया । बारिश होते देखकर सभी सोये भक्त जाग उठे और मस्जिद के अन्दर चले गये ।

सुबह होने तक लगातार पानी गिरता रहा । सारे सूखे पड़े तालाब और गड्ढे पानी से भर गये । शहर की सारी जनता की खुशी का ठिकाना न रहा ।

उस दिन रात को मस्जिद में गये हुए सभी भक्तों ने मिलकर उस गुलाम युवक का पता लगाने की कोशिश की, पर कहीं उसका पता न लगा । आखिर, वे सब मिलकर गुलामों के व्यापारी के पास गये और उससे पूछा, "क्या कोई गुलाम युवक बिकाऊ है ?"

"एक नहीं, कई हैं" कह कर गुलामों का व्यापारी उन्हें गुलामों के पास ले गया ।

व्यापारी के पास बीस गुलाम थे और उनमें ज़्यादातर जवान थे । भक्तों ने उन गुलामों में उस युवक की खोज की, पर वह दिखाई नहीं दिया । वे निराश होकर लौट ही रहे थे कि उन्हें कोने में दीवार से लगा एक युवक दिखाई दिया । रात को जिस भक्त ने उसे टीले पर चढ़ते हुए देखा था, उसने उसे पहचान लिया ।

भक्त उस गुलाम युवक के नज़दीक पहुँचा । व्यापारी ने उसे खड़े होने का आदेश दिया ।

"हम इस गुलाम को ख़रीदना चाहते हैं ।" भक्तों ने इच्छा प्रकट की ।

व्यापारी उन्हें आश्चर्य चकित होकर घूरने लगा, फिर बोला, "मैं एक ईमानदार व्यापारी हूं । आप लोग जिस युवक को ख़रीदना चाहते हैं, वह पागल है । अगर आपको एक कुशल

गुलाम की ज़रूरत है तो मैं आपको एक बहुत बढ़िया गुलाम दे सकता हूं !"

"हम इसी गुलाम युवक को चाहते हैं !" भक्त बोले ।

गुलामों के व्यापारी ने उस पागल युवक को बहुत कम मूल्य लेकर बेच दिया ।

भक्तों ने उसे साथ लिया और सड़क पर आगये । गुलाम युवक ने सिर झुकाकर, हाथ जोड़कर कहा, "मेरे मालिको ! हुक्म दीजिए, मैं आपकी क्या सेवा कर सकता हूं ?"

"तुम्हीं हमें आज्ञा दो ! तुम हमारे मालिक हो ! तुम खुदा के बहुत ही प्यारे हो, यह बात हम अच्छी तरह जानते हैं !" भक्तों ने कहा ।

गुलाम युवक ने उनकी तरफ जिज्ञासा भरी दृष्टि से देखा । रात में जिस भक्त ने उस युवक को देखा था, वह आगे बढ़कर बोला, "क्या तुमने मुझे नहीं पहचाना ? जब तुमने टीले पर प्रार्थना की, आसमान में बादलों के घिरने पर मुझसे बात की, क्या तुम्हें याद नहीं ?"

"ओह ! ऐसी बात है !" कहकर गुलाम युवक ने एक बार सब लोगों की तरफ नज़र डाली, फिर बोला, "रात मुझे होश नहीं था । आपकी बड़ी मेहरबानी हो, अगर आप एकबार मुझे मस्जिद में प्रार्थना करने की अनुमति दे दें तो !"

"जरूर ! जरूर ! क्यों नहीं ! हम तो अब तुम्हारे दास हैं !" भक्त एक स्वर में बोले ।

गुलाम युवक मस्जिद के अन्दर पहुँचा और घुटनों के बल बैठकर बोला, "ऐ खुदा ! मेरे प्रति आपकी जो मुहब्बत है, उसका रहस्य खुल गया है । आइन्दा लोग मेरे चारों तरफ इकट्ठा, हुआ करेंगे और मेरा आदर-सत्कार किया करेंगे । आपके साथ अकेलेपन में जो खुशी मुझे मिलती है, वह आगे मुझे मयस्सर न होगी । आप मेहरबान होकर मुझे अपने पास बुला लीजिए !"

इसके बाद वह काफ़ी देर तक निश्चल बैठा रहा । भक्त लोग उसका इन्तज़ार करते रहे, फिर पास आकर उसके कंधे पर हाथ रखा । देखा, गुलाम युवक का शरीर ठण्डा पड़ चुका था ।
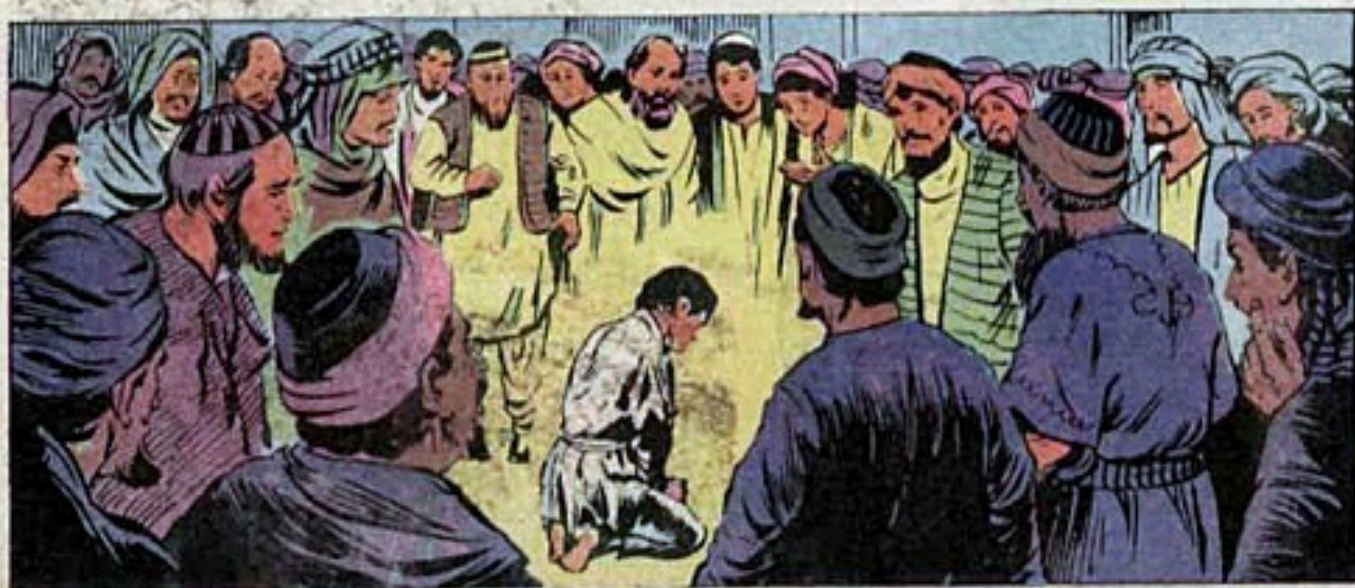
पक्षी और जानवर

आयु की अवधि

अट्ठारहवीं शताब्दी में कप्तानजेम्सकुक ने साहसी नाविक के रूप में प्रसिद्धि प्राप्त की थी। कुक ने १७७३ में दक्षिण प्रशान्त महासागर के द्वीप टोंगा की खोज की और अपनी मैत्री के प्रतीक स्वरूप एक कछुआ उस द्वीप के राजा को भेंट किया। वहां के निवासियों ने उस कछुए का नाम टूई मलेला रखा। वह कछुआ १९६६ में मर गया। उस वक्त उसकी आयु २०० साल की थी।

मनुष्य की आयु की अवधि ११० वर्ष है और औसतन आयु ७० वर्ष है। मनुष्य की तरह जीवित रहने वाले कुछ जानवर भी हैं। कुछ किस्म के कछुए १५२ वर्ष तक भी जीवित रहे हैं।

पक्षियों की आयु की अवधि-जानवरों की अपेक्षा कम है। फिर भी, आस्ट्रेलिया के एक ख़ास तोते के क्रमशः ५६ तथा ७६ वर्ष तक जीवित रहने के प्रमाण प्राप्त हुए हैं। शुतुरमुर्ग के ६२ वर्ष तक जीवित रहने के प्रमाण उपलब्ध हुए हैं। सालव जाति का बाज ७२ वर्ष, समुद्री जाति का कौआ ३६ वर्ष, चातक २१ वर्ष और १६ वर्ष, विल्लोवार बूलर नाम का एक ख़ास नीलकंठ ५ वर्ष तक जीवित रहे हैं। कुछ किस्म की मछलियां १५० वर्ष तक जीवित रहती हैं।

इनके साथ तुलना करने पर पता लगता है कि जो जन्तु स्तन्य होते हैं, उनकी आयु की अवधि कम होती है। घोड़े ६२ वर्ष तक, तिमिंगल तथा हाथी ५० वर्ष से अधिक जीवित नहीं रहते। फिर भी ऐसा जानकारी में आया है कि कुछ हाथी ८० वर्ष तक जीवित रहे हैं।

फोटो-परिचयोक्ति-प्रतियोगिता :: पुरस्कार ५०)

पुरस्कृत परिचयोक्तियाँ जून १९८५ के अंक में प्रकाशित की जायेंगी।

P. V. Subramaniam

Sundara Murty

★ उपर्युक्त फोटो की सही परिचयोक्तियाँ एक शब्द या छोटे वाक्य में हों। ★ अप्रैल १० तक परिचयोक्तियाँ प्राप्त होनी चाहिए। ★ अत्युत्तम परिचयोक्ति को (दोनों परिचयोक्तियों को मिलाकर) ५० रु. का पुरस्कार दिया जाएगा। ★ दोनों परिचयोक्तियाँ केवल कार्ड पर लिखकर निम्न पते पर भेजें: **चन्दामामा फोटो-परिचयोक्ति-प्रतियोगिता, मद्रास-२६**

फरवरी के फोटो - परिणाम

प्रथम फोटो : बच्चों का शौक!

द्वितीय फोटो : हिरणों का खौफ!!

प्रेषक : कु. आशालता गुप्ता, छत्रसालपुरा २, ललितपुर (उ. प्र.) २८४४०३

Printed by B. V. REDDI at Prasad Process Private Ltd., and Published by B. VISWANATHA REDDI for CHANDAMAMA CHILDREN'S TRUST FUND (Prop. of Chandamama Publications) 188, Arcot Road, Madras-600 026 (India). Controlling Editor: NAGI REDDI.

Results of Chandamama Camlin Colouring Contest No. 39 (Hindi)

1st Prize: Puneet Verma, Mirzapur. 2nd Prize: Prasant Jaikar, Chanda. Sanjiv Kumar Jat, Saharanpur. Akhilendu Chatterji, Kalimpong. 3rd Prize: Vinod Kumar, Roorkee. Ravindra Kumar Pathak, Bareilly. Umesh Kumar Singh, Calcutta 700 040. Prema Mahendroo, Calcutta 29. Km. Anita Puranik, Allahabad. Kumar Sanjeev Tamrakar, Bina. Kumare Archna, Ranchi. Narendra Kumar Shukla, Bombay 86. Mr. V.M. Bhartiya, Mhow 453 441. Rajni Mittal, Chandpur.

नई सुबह हुई, नई धूप जगी
नया सनलाइट
डिटर्जेंट पाउडर
आपके कपड़ों में धूप सी चमक दमक जगाए!
आप भी अपने घर में सनलाइट की जगमगर ले आइए. नया सनलाइट डिटर्जेंट पाउडर वज़न में एकदम हल्का है, लेकिन असर में कहीं ज़्यादा है. क़ीमती पाउडरों जैसा कारगर, पर फिर भी बहुत किफ़ायती!
सनलाइट में एक ख़ास पदार्थ है, जो साधारण पाउडरों में नहीं. यह कपड़ों की रग रग से मैल निकाल कर उनमें कुदरती चमक दमक ले आता है. सनलाइट से न हाथों को तकलीफ़, न कपड़ों को नुकसान और इसकी खुशबू ऐसी ताज़ा भीनी भीनी है, जो आपके कपड़ों को भा जाएगी. आप भी सनलाइट की चमक दमक अपने जीवन में ले आइए.
एक बार आज़मा कर तो देखिए–सिर्फ़ रु.६.३५ में.
सिर्फ़
रु. ६.३५*
*(स्थानीय कर अतिरिक्त)
Double Power
SUNLIGHT
DETERGENT POWDER
For a brighter wash
आपके कपड़ों में धूप सी चमक दमक का वादा
हिन्दुस्तान लीवर का एक उत्कृष्ट उत्पादन
OBM/2568 Hin

Regd. No. M. 5452

कमाल का मज़ा...गोल्ड स्पॉट का मज़ा

GOLD SPOT

Trikaya-GS-1-85-HIN